

उसके बाद सुधा रात को आठ बजे उठी, जब बुआ तैयार होकर स्टेशन जा रही थीं और ड्राइवर मोटर निकाल रहा था। और उदास टिमटिमाते हुए सितारों ने देखा कि चन्दर और सुधा दोनों की आँखों में आँसुओं की अवशेष नमी झिलमिला रही थी। उठते हुए सुधा ने क्षण-भर चन्दर की ओर देखा, चन्दर से सिर झुका लिया और बहुत उदास आवाज में कहा, “चलो सुधा, बहुत देर कर दी हम लोगों ने।”

पन्द्रह दिन बाद बुआ आयीं तो उन्होंने घर की शक्ल ही बदल दी। दरवाजे पर और बरसाती में हल्दी के हाथों की छाप लग गयी, कमरों का सभी सामान हटाकर दरियाँ बिछा दी गयीं और सबसे अन्दर वाले कमरे में सुधा का सब सामान रख दिया गया। स्टडी-रूम की सभी किताबें समेट दी गयीं और वहाँ एक बड़ी-सी मशीन लाकर रख दी गयी जिस पर बैठकर बिनती सिलाई करती थी। उसी को कपड़े और गहनों का भंडार-घर बनाया गया और उसकी चाबी बिनती या बुआ के पास रहती थी। गाँव से एक महराजिन, एक कहारिन और दो मजदूर आये थे, वे सभी गैरेज में सोते थे और दिर-भर काम करते थे और ‘पानी पीने’ को माँगते रहते थे। सभी कुर्सियाँ और सोफासेट निकलवाकर सायबान में लगवा दिये गये थे। रसोई के पार वाली कोठरी में कुल्हड़, पत्तलें, प्याले वगैरह रखे थे और पूजा वाले कमरे में शक्कर, घी, तरकारी और अनाज था। मिठाई कहाँ रखी जाएगी, इस पर बुआजी, महराजिन और बिनती में घंटे-भर तक बहस हुई लेकिन जब बुआजी ने बिनती से कहा, “आपन लड़के-बच्चे का बियाह कियो तो कतरनी अस जबान चलाय लिह्यो, अबहिन हर काम में काहे टाँग अड़ावा करत हौ!” तो बिनती चुप हो गयी और अन्त में बुआजी की राय सर्वोपरि मानी गयी। बुआजी की जबान जितनी तेज थी, हाथ भी उतने ही तेज। चार बोरा गेहूँ उन्होंने साफ करके कोठरियों में भरवा दिये। कम-से-कम पाँच तरह की दालें लायी थीं। बेसन पिसवाया, दाल दरवायी, पापड़ बनवाये, मैदा छनवाया, सूजी दरवायी, बरी-मुँगौरी डलवायी, चावल की कचौरियाँ बनवायीं और सबको अलग-अलग गठरी में बाँधकर रख दिया। रात को अकसर बुआजी, महराजिन तथा गाँव की महरिन ढोलक लेकर बैठ जातीं और गीत गातीं। बिनती उनमें भी शामिल रहती।

सच पूछो तो सुधा के ब्याह का जितना उछाह बुआ को नहीं था, उतना बिनती को था। वह सुबह से उठकर झाड़ू लेकर सारा घर बुहार डालती थी, इसके बाद नहाकर तरकारी काटती, उसके बाद फिर चाय चढ़ाती। डॉक्टर साहब, चन्दर, सुधा सभी को चाय देती, बैठकर चन्दर अगर कुछ हिसाब लिखाता तो हिसाब लिखती, फिर अपनी मशीन

पर बैठ जाती और बारह-एक बजे तक सिलाई करती रहती, फिर दोपहर को चावल और दाल बीनती, शाम को खरबूजे काटती, शरबत बनाती और रात-भर जाग-जागकर गाती या दीदी को हँसाने की कोशिश करती। एक दिन सुधा ने कहा, “मेरे ब्याह में तो इतनी खुश है, अपने ब्याह में क्या करेगी?” तो बिनती ने जवाब दिया, “अपने ब्याह में तो मैं खुद बैंड बजाऊँगी, वदी पहनकर!”

घर चमक उठा था जैसे रेशम! लेकिन रेशम के दमकदार, रंगीन उल्लास भरे गोले के अन्दर भी एक प्राणी होता है, उदास स्तब्ध अपनी साँस रोककर अपनी मौत की क्षण-क्षण प्रतीक्षा करने वाला रेशम का कीड़ा। घर के इस सारे उल्लास और चहल-पहल से घिरा हुआ सिर्फ एक प्राणी था जिसकी साँस धीरे-धीरे डूब रही थी, जिसकी आँखों की चमक धीरे-धीरे कुम्हला रही थी, जिसकी चंचलता ने उसकी नज़रों से विदा माँग ली थी, वह थी-सुधा। सुधा बदल गयी थी। गोरा चम्पई चेहरा पीला पड़ गया था, और लगता था जैसे वह बीमार हो। खाना उसे जहर लगने लगा था, अपने कमरे को छोड़कर कहीं जाती न थी। एक शीतलपाटी बिछाये उसी पर दिन-रात पड़ी रहती थी। बिनती जब हँसती हुई खाना लाती और सुधा के इनकार पर बिनती के आँसू छलछला आते तब सुधा पानी के घूँट के सहारे कुछ खा लेती और उदास, फिर अपनी शीतलपाटी पर लेट जाती। स्वर्ग को कोई इन्द्रधनुषों से भर दे और शची को जहर पिला दे, कुछ ऐसा ही लग रहा था वह घर।

डॉक्टर शुक्ला का साहस न होता था सुधा से बोलने का। वह रोज बिनती से पूछ लेते-“सुधा खाना खाती है या नहीं?” बिनती कहती, “हाँ।” तो एक गहरी साँस लेकर अपने कमरे में चले जाते।

चन्दर परेशान था। उसने इतना काम शायद कभी भी न किया हो अपनी जिन्दगी में। सुनार के यहाँ, कपड़े वाले के यहाँ, फिर राशनिंग अफसर के यहाँ, पुलिस बैंड ठीक कराने पुलिस लाइंस, अर्जी देने मैजिस्ट्रेट के यहाँ, रुपया निकालने बैंक, शामियाने का इन्तजाम, पलंग, कुर्सी वगैरह का इन्तजाम, खाने-परोसने के बरतनों के इन्तजाम और जाने क्या-क्या...और जब बुरी तरह थककर आता, जेठ की तपती हुई दोपहरी में, तब बिनती आकर बताती-सुधा ने आज फिर कुछ नहीं खाया तो उसका मन होता था वह सिर पटक-पटक दे। वह सुधा के पास जाता, सुधा आँसू पोंछकर बैठती, एक टूटी-फूटी मुसकान से चन्दर का स्वागत करती। चन्दर उससे पूछता, “खाती क्यों नहीं?”

“खाती तो हूँ चन्दर, इससे ज्यादा गरमियों में मैं कभी नहीं खाती थी।” सुधा कहती और इतने दृढ़ स्वर से कि चन्दर से कुछ प्रतिवाद नहीं करते बनता।

अब बाहरी काम लगभग समाप्त हो गये थे। वैसे तो सभी जगह हल्दी छिड़ककर पत्र रवाना किये जा चुके थे लेकिन निमन्त्रण-पत्र भी बहुत सुन्दर छपकर आये, हालाँकि कुछ देर हो गयी थी। ब्याह को अब कुल सात दिन बचे थे। चन्दर सुबह दस बजे एक डिब्बे में निमन्त्रण-पत्र और लिफाफा-भरे हुए आया और स्टडी-रूम में बैठ गया। बिनती बैठी हुई कुछ सिल रही थी।

“सुधा कहाँ है? उसे बुला लाओ।”

सुधा आयी, सूजी आँखें, सूखे होंठ, रूखे बाल, मैली धोती, निम्प्राण चेहरा और बीमार चाल। हाथ में पंखा लिये थी। आयी और चन्दर के पास बैठ गयी—“कहो, क्या कर आये, चन्दर! अब कितना इन्तजाम बाकी है?”

“अब सब हो गया, सुधा रानी! आज तो पैर जवाब दे रहे हैं। साइकिल चलाते-चलाते पैर में जैसे गाँठें पड़ गयी हों।” चन्दर ने कार्ड फैलाते हुए कहा, “शादी तुम्हारी होगी और जान मेरी निकली जा रही है मेहनत से।”

“हाँ चन्दर, इतना उत्साह तो और किसी को नहीं है मेरी शादी का!” सुधा ने कहा और बहुत दुलार से बोली, “लाओ, पैर दबा दूँ तुम्हारे?”

“अरे पागल हो गयी?” चन्दर ने अपने पैर उठाकर ऊपर रख लिये।

“हाँ, चन्दर!” गहरी साँस लेते हुए सुधा बोली, “अब मेरा अधिकार भी क्या है तुम्हारे पैर छूने का। क्षमा करना, मैं भूल गयी थी कि मैं पुरानी सुधा नहीं हूँ।” और टप से दो आँसू गिर पड़े। सुधा ने पंखे की ओट पर आँखें पोंछ लीं।

“तुम तो बुरा मान गयी, सुधा!” चन्दर ने पैर नीचे रखते हुए कहा।

“नहीं चन्दर, अब बुरा-भला मानने के दिन बीत गये। अब गैरों की बात का भी बुरा-भला नहीं मान पाऊँगी, फिर घर के लोगों की बातों का बुरा-भला क्या...छोड़ो ये सब बातें। ये क्या निमन्त्रण-पत्र छपा है, देखें!”

चन्दर ने एक निमन्त्रण-पत्र उठाया, उसे लिफाफे में भरकर उस पर सुधा का नाम लिखकर कहा, “लो, हमारी सुधा का ब्याह है, आइएगा जरूर!”

सुधा ने निमन्त्रण-पत्र ले लिया—“अच्छा!” एक फीकी हँसी हँसकर बोली, “अच्छा, अगर हमारे पतिदेव ने आज्ञा दे दी तो आऊँगी आपके यहाँ। उनका भी नाम लिख दीजिए वरना बुरा न मान जाएँ।” और सुधा उठ खड़ी हुई।

“कहाँ चली?” चन्दर ने पूछा।

“यहाँ बहुत रोशनी है! मुझे अपना अँधेरा कमरा ही अच्छा लगता है।” सुधा बोली।

“चलो बिनती, वहीं कार्ड ले चलो!” चन्दर ने कहा, “आओ सुधा, आज कार्ड लिखते जाएँगे, तुमसे बात करते जाएँगे। जिन्दगी देखो, सुधी! आज पन्द्रह दिन से तुमसे दो मिनट बैठकर बात भी न कर सके।”

“अब क्या करना है, चन्दर! जैसा कह रहे हो वैसा कर तो रही हूँ। अभी कुछ और बाकी है क्या? बता दो वह भी कर डालूँ। अब तो रो-पीटकर ऊँचा बनना ही है।”

बिनती ने कार्ड समेटे तो सुधा डाँटकर बोली—“रख इसे यहीं; चली उठा के! बड़ी चन्दर की आज्ञाकारी बनी है। ये भी हमारी जान की गाहक हो गयी अब! हमारे कमरे में लायी ये सब, तो टाँग तोड़ दूँगी! पाजी कहीं की!”

बिनती ने कार्ड धर दिये। नौकर ने आकर कहा, “बाबूजी, कुम्हार अपना हिसाब माँगता है।”

“अच्छा, अभी आया, सुधा!” और चन्दर चला गया।

और इस तरह दिन बीत रहे थे। शादी नजदीक आती जा रही थी और सभी का सहारा एक-दूसरे से छूटता जा रहा था। सुधा के मन पर जो कुछ भी धीरे-धीरे मरघट की उदासी की तरह बैठता जा रहा था और चन्दर अपने प्यार से, अपनी मुसकानों से, अपने आँसुओं से धो देने के लिए व्याकुल हो उठा था, लेकिन यह जिन्दगी थी जहाँ प्यार हार जाता है, मुसकानें हार जाती हैं, आँसू हार जाते हैं—तश्तरी, प्याले, कुल्हड़, पत्तलें, कालीनें, दरियाँ और बाजे जीत जाते हैं। जहाँ अपनी जिन्दगी की प्रेरणा-मूर्ति के आँसू गिनने के बजाय कुल्हड़ और प्याले गिनवाकर रखने पड़ते हैं और जहाँ किसी आत्मा की उदासी को अपने आँसुओं से धोने के बजाय पत्तलें धुलवाना ज्यादा महत्वपूर्ण होता है, जहाँ भावना और अन्तर्द्वन्द्व के सारे तूफान सुनार और बिजलीवालों की बातों में डूब जाते हैं, और जहाँ दो आँसुओं में डूबते हुए व्यक्तियों की पुकार शहनाइयों की आवाज में डूब जाती है और जिस वक्त कि आदमी के हृदय का कण-कण क्षतविक्षत हो जाता है, जिस वक्त उसकी नसों में सितारे टूटते हैं, जिस वक्त उसके माथे पर आग धधकती है, जिस वक्त उसके सिर पर से आसमान और पाँव तले से धरती हट जाती है, उस समय उसे शादी की साड़ियों का मोल-तोल करना पड़ता है और बाजे वाले को एडवांस रुपया देना पड़ता है।

ऐसी थी उस वक्त चन्दर की जिन्दगी और उस जिन्दगी ने अपना चक्र पूरी तरह चला दिया था। करोड़ों तूफान घुमड़ाते हुए उसे नचा रहे थे। वह एक क्षण भी कहीं नहीं टिक पाता था। एक पल भी उसे चैन नहीं था, एक पल भी वह यह नहीं सोच पाता था कि उसके चारों ओर क्या हो रहा है? वह बेहोशी में, मूर्छा में मशीन की तरह काम कर रहा था। आवाजें थीं कि उसके कानों से टकराकर चली जाती थीं, आँसू थे कि हृदय को छू नहीं पाते थे, चक्र उसे फँसाकर खींचे लिये जा रहा था। बिजली से भी ज्यादा तेज, प्रलय से भी ज्यादा सशक्त वह खिंचा जा रहा था। सिर्फ एक ओर। शादी का दिन। सुधा

ने नथुनी पहनी, उसे नहीं मालूम। सुधा ने कोरे कपड़े पहने, उसे नहीं मालूम। सुधा ने चूड़े पहने, उसे नहीं मालूम। घर में गीत हुए, उसे नहीं मालूम। सुधा ने चूल्हा पूजते वक्त अपना सिर पटक दिया, उसे नहीं मालूम... वह व्यक्ति नहीं था, तूफान में उड़ता हुआ एक पीला पत्ता था जो वात्याचक्र में उलझ गया था और झोंके उसे नचाये जा रहे थे...

और उसे होश आया तब, जब बिनती जबरदस्ती उसका हाथ पकड़कर खींच ले गयी बारात आने के एक दिन पहले। उस छत पर, जहाँ सुधा पड़ी रो रही थी, चन्दर को ढकेलकर चली आयी।

चन्दर के सामने सुधा थी। सुधा, जिससे वह पता नहीं क्यों बचना चाहता था। अपनी आत्मा के संघर्षों से, अपने अन्तःकरण के घावों की कसक से घबराकर जैसे कोई आदमी एकान्त कमरे में भागकर भीड़ में मिल जाता है, भीड़ के निरर्थक शोर में अपने को खो देना चाहता है, बाहर के शोर में अन्दर का तूफान भुला देना चाहता है; उस तरह चन्दर पिछले हफ्ते से सब कुछ भूल गया; उसे सिर्फ एक चीज याद रहती थी—शादी का प्रबन्ध। सुबह से लेकर सोने के वक्त तक वह इतना काम कर डालना चाहता था कि उसे एक क्षण भी बैठने का मौका न मिले, और सोने से पहले वह इतना थक जाये, इतना चूर-चूर हो जाये कि लेटते ही नींद उसे जकड़ ले और उसे बेहोश कर दे। लेकिन उस वक्त बिनती उसे उसके विस्मरण-स्थल से खींचकर एकान्त में ले आयी है जहाँ उसकी ताकत और उसकी कमजोरी, उसकी पवित्रता और उसका पाप, उसकी मुसकान और उसके आँसू, उसकी प्रतिभा और उसकी विस्मृति; उसकी सुधा अपनी जिन्दगी के चिरन्तन मोड़ पर खड़ी अपना सब कुछ लुटा रही थी। चन्दर को लगा जैसे उसको अभी चक्कर आ जाएगा। वह अकुलाकर खाट पर बैठ गया।

शाम थी, सूरज डूब रहा था और दिन-भर की तपी हुई छत पर जलती हुई बरसाती के नीचे एक खरहरी खाट पर सुधा लेटी थी। एक महीन पीली धोती पहने, कोरी मारकीन की कुर्ती पहने, रूखे चिकटे हुए बाल और नाक में बहुत बड़ी-सी नथ। पन्द्रह दिन के आँसुओं ने चेहरे को जाने कैसा बना दिया। न चेहरे पर सुकुमारता थी, न कठोरता। न रूप था, न ताजगी। सिर्फ ऐसा लगता था कि जैसे सुधा का सब कुछ लुट चुका है। न केवल प्यार और जिन्दगी लुटी है, वरन् आवाज भी लुट गयी है और नीरवता भी। वैभव भी लुट गया और याचना भी।

सुधा ने अपने पीले पल्ले से आँसू पोंछे और उठकर बैठ गयी। दोनों चुप। पहले कौन बोले! बिनती आयी, चन्दर और सुधा का खाना रखकर चली गयी। “खाना खाओगी, सुधा?” चन्दर ने पूछा। सुधा कुछ बोली नहीं सिर्फ सिर हिला दिया। और डूबते हुए सूरज और उड़ते हुए बादलों की ओर देखकर जाने क्या सोचने लगी। चन्दर

ने थाली खिसका दी और सुधा को अपनी ओर खींचकर बोला, “सुधा, इस तरह कैसे काम चलेगा। तुम्हीं को देखकर तो मैं अपना धीरज सँभालूँगा, बताओ और तुम्हीं यह कर रही हो!” सुधा चन्दर के पास खिसक आयी और दो मिनट तक चुपचाप चन्दर की ओर फटी हुई पथरायी आँखों से देखती रही और एकदम हृदय को फाड़ देने वाली आवाज में चीखकर रो उठी—“चन्दर, अब क्या होगा!”

चन्दर की समझ में नहीं आया, वह क्या करे! आँसू उसके सूख चुके थे। वह रो नहीं सकता था। उसके मन पर कहीं कोई पत्थर रखा था जो आँसुओं की बूंदों को बनने के साथ ही सोख लेता था लेकिन वह तड़प उठा, “सुधा!” वह घबराकर बोला, “सुधा, तुम्हें हमारी कसम है—चुप हो जाओ! चुप...बिल्कुल चुप...हाँ...ऐसे ही!” सुधा चन्दर के पाँवों में मुँह छिपाये थी—“उठकर बैठो ठीक से सुधा...इतना समझ-बूझकर यह सब करती हो, छिः! तुम्हें अपना दिल मजबूत करना चाहिए वरना पापा को कितना दुःख होगा।”

“पापा ने तो मुझसे बोलना भी छोड़ दिया है, चन्दर! पापा से कह दे आज तो बोल लें, कल से हम उन्हें परेशान करने नहीं आएँगे, कभी नहीं आएँगे। अब उनकी सुधा को सब ले जा रहे हैं, जाने कहाँ ले जा रहे हैं!” और फिर वह फफक-फफककर रो पड़ी।

चन्दर ने बिनती से पापा को बुलवाया। सुधा को रोते हुए देखकर बिनती खड़ी हो गयी, “दीदी, रोओ मत दीदी, फिर हम किसके भरोसे रहेंगे यहाँ?” और सुधा को चुप कराते-कराते बिनती भी रोने लगी। और आँसू पोंछते हुए चली गयी।

पापा आये। सुधा चुप हो गयी और कुछ कहा नहीं, फिर रोने लगी। डॉक्टर शुक्ला भराये गल से बोले, “मुझे यह रोआई अच्छी नहीं लगती। यह भावुकता क्यों? तुम पढ़ी-लिखी लड़की हो। इसी दिन के लिए तुम्हें पढ़ाया-लिखाया गया था! भावुकता से क्या फायदा?” कहते-कहते डॉक्टर शुक्ला खुद रोने लगे। “चलो चन्दर यहाँ से! अभी जनवासा ठीक करवाना है।” चन्दर और डॉक्टर शुक्ला दोनों उठकर चले गये।

अपनी शादी के पहले, हमेशा के लिए अलग होने से पहले सुधा को इतना ही मौका मिला...उसके बाद...

सुबह छह बजे गाड़ी आती थी, लेकिन खुशकिस्मती से गाड़ी लेट थी; डॉक्टर शुक्ला तथा अन्य लोग बारात का स्वागत करने स्टेशन पर जा रहे थे और चन्दर घर पर ही रह गया था जनवासे का इन्तजाम करने। जनवासा बगल में था। माथुर साहब के बँगले के दोनों हॉल और कमरा खाली करवा लिये गये थे। चन्दर सुबह छह ही बजे आ गया था और जनवासे में सब सामान लगवा दिया था। नहाने का पानी और बाकी इन्तजाम कर वह घर आया। जलपान का इन्तजाम तो केदार के हाथ में था लेकिन कुछ तौलिये भिजवाने थे।

“बिनती, कुछ तौलिये निकाल दो।” चन्दर ने बिनती से कहा।

बिनती उर्द की दाल धो रही थी। उसने फौरन उठकर हाथ धोये और कमरे की ओर चली गयी।

“ऐ बिनती...” बुआजी ने भंडारे के अन्दर से आवाज लगायी—“जाने कहाँ मर गयी मुँहझौंसी! अरे सिंगार-पटार बाद में कर लियो, काम में तनिक दीदा नै लगते। बेसन का कनस्टर कहाँ रखा है?”

“अभी आये!” बिनती ने चन्दर से कहा और अपनी माँ के पास दौड़ी, पन्द्रह मिनट हो गये लेकिन बिनती लौटी ही नहीं। ब्याह का घर! हर तरफ से बिनती की पुकार मचती और बिनती पंख लगाये उड़ रही थी। जब बिनती नहीं लौटी तो चन्दर ने सुधा को दूँढ़कर कहा, “सुधी, एक बहुत बड़ा-सा तौलिया निकाल दो।”

सुधा चुपचाप उठी और स्टडी-रूम में चली गयी। चन्दर भी पीछे-पीछे गया।

“बैठो, अभी निकालकर लाते हैं।” सुधा ने भरी हुई आवाज में कहा और बगल के कमरे में चली गयी। वहाँ से लौटी तो उसके हाथ में मीठे की तश्तरी थी।

“अरे खाने का वक्त नहीं है, सुधा! आठ बजे लोग आ जाएँगे।”

“अभी दो घंटे हैं, खा लो चन्दर! अब कभी तुम्हारे काम में हरजा करके खाने को नहीं कहूँगी!” सुधा बोली। चन्दर चुप।

“याद है, चन्दर! इसी जगह आँचल में छिपाकर नानखटाई लायी थी। आओ, आज अपने हाथ से खिला दूँ। कल ये हाथ पराये हो जाएँगे।” और सुधा ने एक इमरती तोड़कर चन्दर के मुँह में दे दी। चन्दर की आँखों में दो आँसू छलक आये—सुधा ने अपने हाथ से आँसू पोंछ दिये और बोली, “चन्दर, घर में कोई खाने का खयाल करने वाला नहीं है। खाते-पीते जाना, तुम्हें हमारी कसम है। मैं शाहजहाँपुर से लौटकर आऊँगी तो दुबले मत मिलना।” चन्दर कुछ बोला नहीं। आँसू बहते गये, सुधा खिलाती गयी, वह खाता गया। सुधा ने गिलास में पानी दिया, उसने हाथ धोया और जेब से रूमाल निकाला।

“क्यों, आज आँचल में हाथ नहीं पोंछोगे?” सुधा बोली। चन्दर ने आँचल हाथ में ले लिया और पलकों पर आँचल दबाकर फूट-फूटकर रो पड़ा।

“छिः, चन्दर! आज तो हम सँभल गये हैं, हमने सब स्वीकार कर लिया चुपचाप। अब तुम कमजोर मत बनो, तुमने कहा था, मैं शान्त रहूँ तो शान्त हो गयी। अब क्यों मुझे भी रुलाओगे! उठो।” चन्दर उठ खड़ा हुआ।

सुधा ने एक पान चन्दर के मुँह में देकर कत्था उसकी कमीज से लगा दिया। चन्दर कुछ नहीं बोला।

“अरे, आज तो लड़ लो, चन्दर! आज से खत्म कर देना।”

इतने में बिनती तौलिया ले आयी। “दीदी, इन्हें कुछ खिला दो। ये खा नहीं रहे हैं।” बिनती ने कहा।

“खिला दिया।” सुधा बोली, “देखो चन्दर, आज मैं नहीं रोऊँगी लेकिन एक शर्त पर। तुम बराबर मेरे सामने रहना। मंडप में रहोगे न?”

“हाँ, रहूँगा।” चन्दर ने आँसू पीते हुए कहा।

“कहीं चले मत जाना! मेरी आखिरी बिनती है।” सुधा बोली। चन्दर तौलिया लेकर चला आया।

चूँकि बारात में कुल आठ ही लोग थे अतः घर की और माथुर साहब की दो ही कारों से काम चल गया। जब ये लोग आये तो नाश्ते का सामान तैयार था और चन्दर चुपचाप बैठा था। उसने फौरन सबका सामान लगवाया और सामान रखवाकर वह जा ही रहा था कि कैलाश ने पीछे से कन्धे पर हाथ रखकर उसे पीछे घुमा लिया और गले से लगकर बोला, “कहाँ चले कपूर साहब, नमस्ते! चलो, पहले नाश्ता करो।” और खींचकर वह चन्दर को ले गया। अपने बगल की मेज पर बिठाकर, उसकी चाय अपने हाथ से बनायी और बोला, “कुछ नाराज थे क्या, कपूर? खत का जवाब क्यों नहीं देते थे?”

“हम तो बराबर खत का जवाब देते रहे, यार!” कपूर चाय पीते हुए बोला।

“अच्छा तो हम घूमते रहे इधर-उधर, खत गड़बड़ हो गये होंगे।...लो, समोसा खाओ!” कैलाश ने कहा। चन्दर ने सिर हिलाया तो बोला, “अरे, वाह म्याँ? शादी तुम्हारी नहीं हो रही है, हमारी हो रही है, समझे? तुम क्यों तकल्लुफ कर रहे हो। अच्छा कपूर...काम तो तुम्हीं पर होगा सब!”

“हाँ!” कपूर बोला।

“बड़ा अफसोस है, यार! जब हम लोग पहली दफा मिले थे तो यह नहीं मालूम था कि तुम और डॉक्टर साहब इतना अच्छा इनाम दोगे, अपने को बचाने का। हमारे लायक कोई काम हो तो बताओ!”

“आपकी दुआ है!” चन्दर ने सिर झुकाकर कहा, और सभी हँस पड़े। इतने में शंकरबाबू डॉक्टर साहब के साथ आये और सब लोग चुप हो गये।

दिन भर के व्यवहार से चन्दर ने देखा कि कैलाश भी उतना ही अच्छा हँसमुख और शालीन है जितने शंकरबाबू थे। वह उसे राजनीतिक क्षेत्र में जितना फौलादी लगा था, घरेलू जिन्दगी में उतना ही अच्छा लगा। चन्दर का मन खुशी से नाच उठा। सुधा की ओर से वह थोड़ा निश्चिन्त हो गया। अब सुधा निभा ले जाएगी। वह मौका निकालकर घर में गया। देखा, सुधा को औरतें घेरे हुए बैठी हैं और महावर लगा रही हैं। बिनती कनस्तर में से घी निकाल रही थी। चन्दर गया और बिनती की चोटी घसीटकर बोला,

“ओ गिलहरी, घी पी रही है क्या?”

बिनती ने दंग होकर चन्दर की ओर देखा। आज तक कभी अच्छे-भले में तो चन्दर ने उसे नहीं चिढ़ाया था। आज क्या हो गया? आज जबकि पिछले पन्द्रह रोज से चन्दर के होठ मुसकराना भूल गये थे।

“आँख फाड़कर क्या देख रही है? कैलाश बहुत अच्छा लड़का है, बहुत अच्छा। अब सुधा बहुत सुखी रहेगी। कितना अच्छा होगा, बिनती! हँसती क्यों नहीं गिलहरी!” और चन्दर ने बिनती की बाँह में चुटकी काट ली।

“अच्छा! हमें दीदी समझा है क्या? अभी बताती हूँ।” और घी भरे हाथ से चन्दर की बाँह पकड़कर बिनती ने जोर से घुमा दी। चन्दर ने अपने को छुड़ाया और बिनती को चपत मारकर गुनगुनाता हुआ चला गया।

बिनती ने कनस्तर के मुँह पर लगा घी पोंछा और मन में बोली, ‘देवता और किसे कहते हैं?’

शाम को बारात चढ़ी। सादी-सी बारात। सिर्फ एक बैंड था। कैलाश ने शेरवानी और पायजामा पहना था, और टोपी। सिर्फ एक माला गले में पड़ी थी और हाथ में कंगन बँधा था। मौर पीछे किसी आदमी के हाथ में था। जयमाला की रस्म होने वाली थी। लेकिन बुआजी ने स्पष्ट कर दिया कि हमारी लड़की कोई ऐसी-वैसी नहीं कि ब्याह के पहले भरी बारात में मुँह खोलकर माला पहनाये। लेकिन घूँघट के मामले पर सुधा ने दृढ़ता से मना किया था, वह घूँघट बिल्कुल नहीं करेगी।

अन्त में पापा उसे मंडप में ले आये। घर का काम-काज निबट गया था। सभी लोग आँगन में बैठे थे। कामिनी, प्रभा, लीला सभी थीं, एक ओर बाराती बैठे थे। सुधा शान्त थी लेकिन उसका मुँह ग्रहण के चन्द्रमा की तरह निस्तेज था। मंडप का एक बल्ब खराब हो गया था और चन्दर सामने खड़ा उसे बदल रहा था। सुधा ने जाते-जाते चन्दर को देखा और आँसू पोंछकर मुसकराने लगी और मुसकराकर फिर आँसू पोंछने लगी। कामिनी, प्रभा, लीला तमाम लड़कियाँ कैलाश पर फब्तियाँ कस रही थीं। सुधा सिर झुकाये बैठी थी। पापा से उसने कहा, “बिनती को हमारे पास भेज दो।” बिनती आकर सुधा के पीछे बैठ गयी। कैलाश ने आँख के इशारे से चन्दर को बुलाया। चन्दर जाकर पीछे बैठा तो कैलाश ने कहा, “यार, यहाँ जो लोग खड़े हैं इनका परिचय तो बता दो चुपके से!” चन्दर ने सभी का परिचय बताया। कामिनी, प्रभा, लीला सभी के बारे में जब चन्दर बता रहा था तो बिनती बोली, “बड़े लालची मालूम देते हैं आप? एक से सन्तोष नहीं है क्या? वाह रे जीजाजी!” कैलाश ने मुसकराकर चन्दर से पूछा, “इसका ब्याह तय हुआ कि नहीं?”

“हो गया।” चन्दर ने कहा।

“तभी बोलने का अभ्यास कर रही हैं; मंडप में भी इसीलिए बैठी हैं क्या?” कैलाश ने कहा। बिनती झेंप गयी और उठकर चली गयी।

संस्कार शुरू हुआ। कैलाश के हाथ में नारियल और उसकी मुट्ठी पर सुधा के दोनों हाथ। सुधा अब चुप थी। इतनी चुप...इतनी चुप कि लगता था उसके होंठों ने कभी बोलना जाना ही नहीं। संस्कार के दौरान ही पारस्परिक वचन का समय आया। कैलाश ने सभी प्रतिज्ञाएँ स्वयं कहीं। शंकरबाबू ने कहा, लड़की भी शिक्षित है और उसे भी स्वयं वचन करने होंगे। सुधा ने सिर हिला दिया। एक असन्तोष की लहर-सी बारातियों में फैल गयी। चन्दर ने बिनती को बुलाया। उसके कान में कहा, “जाकर सुधा से कह दो कि पागलपन नहीं करते। इससे क्या फायदा?” बिनती ने जाकर बहुत धीरे से सुधा के कान में कहा। सुधा ने सिर उठाकर देखा। सामने बरामदे की सीढ़ियों पर चन्दर बैठा हुआ बड़ा चिन्तित-सा कभी शंकरबाबू की ओर देखता और कभी सुधा की ओर। सुधा से उसकी निगाह मिली और वह सिहर-सा उठा, सुधा क्षण-भर उसकी ओर देखती रही। चन्दर ने जाने क्या कहा और सुधा ने आँखों-ही-आँखों में उसे क्या जवाब दे दिया। उसके बाद सुधा नीचे रखे हुए पूजा के नारियल पर लगे हुए सिन्दूर को देखती रही फिर एक बार चन्दर की ओर देखा। विचित्र-सी थी वह निगाह, जिसमें कातरता नहीं थी, करुणा नहीं थी, आँसू नहीं थे, कमजोरी नहीं थी, था एक गम्भीरतम विश्वास, एक उपमाहीन स्नेह, एक सम्पूर्णतम समर्पण। लगा, जैसे वह कह रही हो—सचमुच तुम कह रहे हो, फिर सोच लो चन्दर...इतने दृढ़ हो...इतने कठोर हो...मुझसे मुँह से क्यों कहलवाना चाहते हो...क्या सारा सुख लूटकर थोड़ी-सी आत्मवंचना भी मेरे पास नहीं छोड़ोगे?...अच्छा लो, मेरे देवता! और उसने हारकर सिसकियों से सने स्वरों में अपने को कैलाश को समर्पित कर दिया। प्रतिज्ञाएँ दोहरा दीं और उसके बाद साड़ी का एक छोर खींचकर, नथ की डोरी ठीक करने के बहाने उसने आँसू पोंछ लिये।

चन्दर ने एक गहरी साँस ली और बगल में बैठी हुई बुआजी से कहा, “बुआजी, अब तो बैठा नहीं जाता। आँखों में जैसे किसी ने मिर्च भर दी हो।”

“जाओ...जाओ, सोय रहो ऊपर, खाट बिछी है। कल सुबह दस बजे विदा करे को है। कुछ खायो-पियो नै, तो पड़े रहबो!” बुआ ने बड़े स्नेह से कहा।

चन्दर ऊपर गया तो देखा एक खाट पर बिनती औंधी पड़ी सिसक रही है। “बिनती! बिनती!” उसने बिनती को पकड़कर हिलाया। बिनती फूट-फूटकर रो पड़ी।

“उठ पगली, हमें तो समझाती है, खुद अपने-आप पागलपन कर रही है।” चन्दर ने रूंधे गल से कहा।

बिनती उठकर एकदम चन्दर की गोद में समा गयी और दर्दनाक स्वर में बोली, “हाय चन्दर...अब...क्या...होगा?”

चन्दर की आँखों में आँसू आ गये, वह फूट पड़ा और बिनती को एक डूबते हुए सहारे की तरह पकड़कर उसकी माँग पर मुँह रखकर फूट-फूटकर रो पड़ा। लेकिन फिर भी सँभल गया और बिनती का माथा सहलाते हुए और अपनी सिसकियों को रोकते हुए कहा, “रो मत पगली।”

धीरे-धीरे बिनती चुप हुई। और खाट के पास नीचे छत पर बैठ गयी और चन्दर के घुटनों पर हाथ रखकर बोली, “चन्दर, तुम आना मत छोड़ना। तुम इसी तरह आते रहना! जब तक दीदी ससुराल से लौट न आएँ।”

“अच्छा!” चन्दर ने बिनती की पीठ पर हाथ रखकर कहा, “घबराते नहीं। तुम तो बहादुर लड़की हो न! सब चीज बहादुरी से सहना चाहिए। कैसी दीदी की बहन हो? क्यों?”

बिनती उठकर नीचे चली गयी।

चन्दर लेट रहा। उसकी पोर-पोर में दर्द हो रहा था। नस-नस को जैसे कोई तोड़ रहा हो, खींच रहा हो। हड्डियों के रेशे-रेशे में थकान मिल गयी थी लेकिन उसे नींद नहीं आयी। आँगन में पुरोहितजी के मन्त्र-पाठ का स्वर और बीच-बीच में आने वाले किसी बाराती या औरतों की आवाजें उसके मन को अस्त-व्यस्त कर देती थीं। उसकी थकान और उसकी अशान्ति ही उसको बार-बार झटके देती थी। वह करवट बदलता, कभी ऊपर देखता, कभी आँखें बन्द कर लेता कि शायद नींद आ जाए लेकिन नींद नहीं ही आयी। धीरे-धीरे नीचे का रव भी शान्त हो गया। संस्कार भी समाप्त हुआ। बाराती उठकर चलने लगे और वह आवाजों से यह पहचानने की कोशिश करने लगा कि अब कौन क्या कर रहा है। धीरे-धीरे सब शोर शान्त हो गया।

चन्दर ने फिर करवट बदली और आँख बन्द कर ली। धीरे-धीरे एक कोहरा उसके मन पर छा गया। वह इतना जागा कि अब अगर वह आँख भी बन्द करता तो जब पलकें पुतलियों से छा जातीं तो एक बहुत कड़ुआ दर्द होने लगा था। जैसे-तैसे उसकी थोड़ी-सी आँख लगी...

किसी ने सहसा जगा दिया। पलक बन्द करने में जितना दर्द हुआ था उतना ही पलकें खोलने में। उसने पलकें खोलों-देखा सामने सुधा खड़ी थी...

माँग और माथे में सिन्दर, कलाई में कंगन, हाथ में अँगूठियाँ, कड़े, चूड़े, गले में गहने, बड़ी-सी नथुनी डोरे के सहारे कान में बँधी हुई, आँखें-जिनमें भादों की घटाओं की गरज खामोश हो रही बरसात-सी हो गयी थी।

वह क्षण-भर पैताने खड़ी रही। चन्दर उठकर बैठ गया! उसका दिल इस तरह धड़क रहा था जैसे किसी के सामने भाग्य का रूठा हुआ देवता खड़ा हो। सुधा कुछ बोली नहीं। उसने दोनों हाथ जोड़े और झुककर चन्दर के पैरों पर माथा टेक दिया। चन्दर ने उसके सिर पर हाथ रखकर कहा, “ईश्वर तुम्हारा सुहाग अटल करे! तुम बहुत

महान् हो। मुझे तुम पर आज से गर्व है। आज तक तुम जो कुछ थीं उससे कहीं ज्यादा हो मेरे लिए, सुधा!"

सुधा कुछ बोली नहीं। आँचल से आँसू पोंछती हुई पायताने जमीन पर बैठ गयी। और अपने गले से एक बेले का हार उतारा। उसने तोड़ डाला और चन्दर के पाँव खींचकर खाट के नीचे जमीन पर रख लिये।

"अरे यह क्या कर रही हो, सुधा।" चन्दर ने कहा।

"जो मेरे मन में आएगा!" बहुत मुश्किल से रूँधे गले से सुधा बोली, "मुझे किसी का डर नहीं, तुम जो कुछ दंड दे चुके हो, उससे बड़ा दंड तो अब भगवान भी नहीं दे सकेंगे?" सुधा ने चन्दर के पाँवों पर फूल रखकर उन्हें चूम लिया और अपनी कलाई में बँधी हुई एक पुड़िया खोलकर उसमें से थोड़ा-सा सिन्दूर उन फूलों पर छिड़ककर, चन्दर के पाँवों पर सिर रखकर चुपचाप रोती रही।

थोड़ी देर बाद उठी और उन फूलों को समेटा। अपने आँचल के छोर में उन्हें बाँध लिया और उठकर चली...धीमे-धीमे निःशब्द...

"कहाँ चली, सुधा?" चन्दर ने सुधा का हाथ पकड़ लिया।

"कहीं नहीं!" अपना हाथ छुड़ाते हुए सुधा ने कहा।

"नहीं-नहीं, सुधा, लाओ ये हम रखेंगे!" चन्दर ने सुधा को रोकते हुए कहा।

"बेकार है, चन्दर! कल तक, परसों तक ये जूठे हो जाएँगे, देवता मेरे!" और सुधा सिसकते हुए चली गयी।

एक चमकदार सितारा टूटा और पूरे आकाश पर फिसलते हुए जाने किस क्षितिज में खो गया।

दूसरे दिन आठ बजे तक सारा सामान स्टेशन पहुँच गया। शंकरबाबू और डॉक्टर साहब पहले ही स्टेशन पहुँच गये थे। बाराती भी सब वहीं चले गये थे। कैलाश और सुधा को स्टेशन तक लाने का जिम्मा चन्दर पर था। बहुत जल्दी करते-कराते भी सवा नौ बज गये थे। उसने फिर जाकर कहा। कैलाश और सुधा खड़े हुए थे। पीछे से नाइन सुधा के सिर पर पंखा रखी थी और बुआजी रोचना कर रही थीं। चन्दर के जल्दी मचाने पर अन्त में उन्हें फुरसत मिली और वह आगे बढ़े। मोटर पर सुधा ने ज्यों ही पाँव रखा कि बिनती पाँव से लिपट गयी और रोने लगी। सुधा जोर से बिलख-बिलखकर रो पड़ी। चन्दर ने बिनती को छुड़ाया। सुधा पीछे बैठकर खिड़की पर मुँह रखकर सिसकती रही।

मोटर चल दी। सुधा मुड़कर अपने घर की ओर देख रही थी। बिनती ने हाथ जोड़े तो सुधा चीखकर रो पड़ी। फिर चुप हो गयी।

स्टेशन पर भी सुधा बिल्कुल शान्त रही। सुधा और कैलाश के लिए सेकेंड क्लास में एक बर्थ सुरक्षित थी। बाकी लोग ड्योढ़े में थे। शंकरबाबू ने दोनों को उस डिब्बे में पहुँचाया और बोले, “कैलाश, तुम ज़रा हमारे साथ आओ। मिस्टर कपूर, ज़रा बहू के पास आप रहिए। मैं डॉक्टर साहब को यहाँ भेज रहा हूँ।”

चन्दर खिड़की के पास खड़ा हो गया। शंकरबाबू का छोटा बच्चा आकर अपनी नयी चाची के पास बैठ गया और उनकी रेशमी चादर से खेलने लगा। चन्दर चुपचाप खड़ा था।

सहसा सुधा ने उसके हाथों पर अपना मेहँदी लगा हाथ रख दिया और धीमे से कहा, “चन्दर!” चन्दर ने मुड़कर देखा तो बोली, “अब कुछ सोचो मत। इधर देखो!” और सुधा ने जाने कितने दुलार से चन्दर से कहा, “देखो, बिनती का ध्यान रखना। उसे तुम्हारे ही भरोसे छोड़ रही हूँ और सुनो, पापा को रात को सोते वक्त दूध में ओवल्टीन जरूर दे देना। खाने-पीने में गड़बड़ी मत करना, यह मत समझना कि सुधा मर गयी तो फिर बिना दूध की चाय पीने लगो। हम जल्दी से आ जाएँगे। पम्मी का कोई खत आये तो हमें लिखना।”

इतने में डॉक्टर साहब और कैलाश आ गये। कैलाश कम्पार्टमेंट के बाथरूम में चला गया। डॉक्टर साहब आये और सुधा के सिर पर हाथ रखकर बोले, “बेटा! आज तेरी माँ होती तो कितना अच्छा होता। और देख, महीने-भर में बुला लेंगे तुझे! वहाँ घबराना मत।”

गाड़ी ने सीटी दी।

पापा ने कहा, “बेटा, अब ठीक से रहना और भावुकता या बचपना मत करना। समझी!” पापा ने आँख से रूमाल लगा लिया—“विवाह बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है। अब तुम्हारी नयी जिन्दगी है। अब तक बेटी थी, अब बहू हो...।”

सुधा बोली, “पापा, तुम्हारा ओवल्टीन का डिब्बा शीशे वाली मेज पर है। उसे पी लिया करना और पापा, बिनती को गाँव मत भेजना। चन्दर को अब घर पर ही बुला लो। तुम अकेले पड़ गये! और हमें जल्दी बुला लेना...”

गार्ड ने सीटी दी। कैलाश ने जल्द से डॉक्टर साहब के पैर छुए। चन्दर से हाथ मिला लिया। सुधा बोली, “चन्दर, ये पुर्जा बिनती को देना और देखो मेरा नतीजा निकले तो तार देना।” गाड़ी चल पड़ी। “अच्छा पापा, अच्छा चन्दर...” सुधा ने हाथ जोड़े और खिड़की पर टिककर रोने लगी। और बार-बार आँसू पोंछ-पोंछकर देखने लगी।...

गाड़ी प्लेटफार्म के बाहर चली गयी तब चन्दर मुड़ा। उसके बदन में पोर-पोर में दर्द हो रहा था। वह कैसे घर पर पहुँचा उसे मालूम नहीं।

दो

चन्द्र को हफ्ते-भर तक होश नहीं रहा। शादी के दिनों में उसे एक नशा था जिसके बल पर वह मशीन की तरह काम करता गया। शादी के बाद इतनी भयंकर थकावट उसकी नसों में कसक उठी कि उसका चलना-फिरना मुश्किल हो गया। वह अपने घर से होटल तक खाना खाने नहीं जा पाता था। बस पड़ा-पड़ा सोता रहता। सुबह नौ बजे सोता; पाँच बजे उठता; थोड़ी देर होटल में बैठकर फिर वापस आ जाता। चुपचाप छत पर लेटा रहता और फिर सो जाता। उसका मन एक उजड़े हुए नीड़ की तरह था जिसमें से विचार, अनुभूति, स्पन्दन और रस के विहंगम कहीं दूर उड़ गये थे। लगता था, जैसे वह सब कुछ भूल गया है। सुधा, बिनती, पम्मी, डॉक्टर साहब, रिसर्च, थीसिस, सभी कुछ! ये सब चीजें कभी-कभी उसके मन में नाच जातीं लेकिन चन्द्र को ऐसा लगता कि ये किसी ऐसी दुनिया की चीजें हैं जिसको वह भूल गया है, जो उसके स्मृति-पटल से मिट चुकी है, कोई ऐसी दुनिया जो कभी थी, कहीं थी, लेकिन किसी भयंकर जलप्रलय ने जिसका कण-कण ध्वस्त कर दिया था। उसकी दुनिया अपनी छत तक सीमित थी, छत के चारों ओर की ऊँची दीवारों और उन चारदीवारों से बँधे हुए आकाश के चौकोर दुकड़े तक ही उसके मन की उड़ान बँध गयी थी। उजाला पाख था। पहले वह लुब्धक तारे की रोशनी देखता फिर धीरे-धीरे चाँद की दूधिया रोशनी सफेद कफन की तरह छा जाती और वह मन में थके हुए स्वर जैसे चाँदनी को ओढ़ता हुआ-सा कहता, “सो जा मुरदे...सो जा।”

छठे दिन उसका मन कुछ ठीक हुआ। थकावट, जो एक केंचुल की तरह उस पर छायी हुई थी, धीरे-धीरे उतर गयी और उसे लगा जैसे मन में कुछ टूटा हुआ-सा दर्द कसक रहा है। यह दर्द क्यों है, कैसा है, यह उसके कुछ समझ में नहीं आता था। पाँच बजे थे लेकिन धूप बिल्कुल नहीं थी। पीले उदास बादलों की एक झीनी तह ने ढलते हुए आषाढ़ के सूरज को ढँक लिया था। हवा में एक ठंडक आ गयी थी; लगता था कि

झोंके किसी वर्षा के देश से आ रहे हैं। वह उठा, नहाया और बिनती के घर चल पड़ा।

डॉक्टर शुक्ला लॉन पर हाथ में किताब लिए टहल रहे थे। पाँच दिनों में जैसे वह बहुत बूढ़े हो गये थे। बहुत झुके हुए-से निस्तेज चेहरा, डबडबायी आँखें और चाल में जैसे उम्र थक गयी हो। उन्होंने चन्दर का स्वागत भी उस तरह नहीं किया जैसे पहले करते थे। सिर्फ इतना बोले, “चन्दर, दो दफे ड्राइवर को भेजकर बुलाया तो मालूम हुआ तुम सो रहे हो। अब अपना सामान यहीं ले आओ।” और वे बैठकर किताब उलट-पलट कर देखने लगे। अभी तक वे बूढ़े थे, उनका व्यक्तित्व तरुण था। आज लगता था जैसे उनके व्यक्तित्व पर झुर्रियाँ पड़ने लगी हैं, उनके व्यक्तित्व की कमर भी झुक गयी है। चन्दर कुछ नहीं बोला। चुपचाप खड़ा रहा। सामने आकाश पर एक अजब-सी जदी छा रही थी। डॉक्टर साहब ने किताब बन्द की और बोले, “सुना है... कॉलेज के प्रिंसिपल आ गये हैं। जाऊँ ज़रा उनसे तुम्हारे बारे में बात कर आऊँ। तुम जाओ, सुधा का खत आया है बिनती के पास।”

“बुआजी हैं?” चन्दर ने पूछा।

“नहीं, आज ही सुबह तो गयीं। हम लोग कितना रोकते रहे लेकिन उन्हें कहीं और चैन ही नहीं पड़ता। बिनती को बड़ी मुश्किल से रोका मैंने।” और डॉक्टर साहब गैरज की ओर चल पड़े।

चन्दर भीतर गया। सारा घर इतना सुनसान था, इतना भयंकर सन्नाटा कि चन्दर के रोएँ-रोएँ खड़े हो गये। शायद मौत के बाद का घर भी इतना नीरव और इतना भयानक न लगता होगा जितना यह शादी के बाद का घर। सिर्फ रसोई से कुछ खटपट की आवाज आ रही थी। “बिनती!” चन्दर ने पुकारा। बिनती चौके में थी। वह निकल आयी। बिनती को देखते ही चन्दर दंग हो गया। वह लड़की इतनी दुबली हो गयी थी कि जैसे बीमार हो। रो-रोकर उसकी आँखें सूज गयी थीं और होठ मोटे पड़ गये थे। चन्दर को देखते ही उसने कड़ाही उतारकर नीचे रख दी और बिखरी हुई लटें सुधारकर, आँचल ठीक कर बाहर निकल आयी। कमरे से खींचकर एक चौकी आँगन में डालकर चन्दर से बहुत उदास स्वर में बोली, “बैठिए!”

“घर कितना सूना लग रहा है बिनती, तम अकेले कैसे रहती होगी?” चन्दर ने कहा। बिनती की आँखों में आँसू छलछला आये।

“बिनती, रोती क्यों हो? छिः! मुझे देखो। मैं कैसे पत्थर बन गया हूँ। क्यों? तुम तो इतनी अच्छी लड़की हो।” चन्दर ने बिनती के कन्धे पर हाथ रखकर कहा।

बिनती ने आँसू भरी पलकें चन्दर की ओर उठायीं और बड़े ही कातर स्वर में कहा, “आप देवता हो सकते हैं, लेकिन हरेक तो देवता नहीं है। फिर आपने कहा था आप आएँगे बराबर। पिछले हफ्ते से आये भी नहीं। यह भी नहीं सोचा कि हमारा क्या

हाल होगा! रोज सुबह-शाम कोई भी आता तो हम दौड़कर देखते कि आप आये हैं या नहीं। दीदी आपकी थीं! बस उन तक आपका रिश्ता था। हम तो आपके कोई नहीं हैं।”

“नहीं बिनती! इतने थक गये थे कि हमें कहीं आने-जाने की हिम्मत ही नहीं पड़ती थी। बुआजी को जाने क्यों दिया तुमने? उन्हें रोक लेतीं!” चन्दर ने कहा।

“अरे, वह थीं तो रोने भी नहीं देती थीं। मैं दो-तीन दिन तक रोयी तो मुझ पर बहुत बिगड़ीं और महाराजिन से बोलीं, हमने तो ऐसी लड़की ही नहीं देखी। बड़ी बहन का ब्याह हो गया तो मारे जलन के दिन-रात आँसू बहा-बहाकर अमंगल बनाती है। जब बखत आएगा तभी शादी करेंगे कि अभी ही किसी के साथ निकाल दूँ।” बिनती ने एक गहरी साँस लेकर कहा, “आप समझ नहीं सकते कि जिन्दगी कितनी खराब है। अब तो हमारी तबीयत होती है कि मर जाएँ। अभी तक दीदी थीं, सहारा दिय रहती थीं। हिम्मत बैधाये रहती थीं, अब तो कोई नहीं हमारा।”

“छिः, ऐसी बातें नहीं करते, बिनती! महीने-भर में सुधा आ जाएगी। और माँ की बातों का क्या बुरा मानना?”

“आप लड़की होते तो समझते, चन्दर बाबू!” बिनती बोली और जाकर एक तश्तरी में नाश्ता ले आयी, “लो, दीदी कह गयी थीं कि चन्दर के खाने-पीने का खयाल रखना लेकिन यह किसको मालूम था कि दीदी के जाते ही चन्दर गैर हो जाएँगे।”

“नहीं बिनती, तुम गलत समझ रही हो। जाने क्यों एक अजीब-सी खिन्नता मन में आ गयी थी। कुछ करने की तबीयत ही नहीं होती थी। आज कुछ तबीयत ठीक हुई तो सबसे पहले तुम्हारे ही पास आया। बिनती! अब सुधा के बाद मेरा है ही कौन, सिवा तुम्हारे?” चन्दर ने बहुत उदास स्वर में कहा।

“तभी न! उस दिन मैं बुलाती रह गयी और आप यह गये, वह गये और आँख से ओझल! मैंने तो उसी दिन समझ लिया था कि अब पुराने चन्दर बाबू बदल गये।” बिनती ने रोते हुए कहा।

चन्दर का मन भर आया था, गले में आँसू अटक रहे थे लेकिन आदमी की जिन्दगी भी कैसी अजब होती है। वह रो भी नहीं सकता था, माथे पर दुःख की रेखा भी झलकने नहीं दे सकता था, इसलिए कि सामने कोई ऐसा था, जो खुद दुःखी था और सुधा की थाती होने के नाते बिनती को समझाना उसका पहला कर्तव्य था। बिनती के आँसू रोकने के लिए वह खुद अपने आँसू पी गया और बिनती से बोला, “लो, कुछ तुम भी खाओ।” बिनती ने मना किया तो उसने अपने हाथ से बिनती को खिला दिया। बिनती चुपचाप खाती रही और रह-रहकर आँसू पोंछती रही।

इतने में महाराजिन आयी। बिनती ने चौंके के काम समझा दिये और चन्दर से बोली, “चलिए, ऊपर चलें।” चन्दर ने चारों ओर देखा। घर का सन्नाटा वैसा ही था।

सहसा उसके मन में एक अजीब-सी बात आयी। सुधा के साथ कभी भी कहीं भी वह जा सकता था, लेकिन बिनती के साथ छत पर अकेले जाने में क्यों उसके अन्तःकरण ने गवाही नहीं दी। वह चुपचाप बैठा रहा। बिनती कुछ भी हो, कितनी ही समीप क्यों न हो, बिनती सुधा नहीं थी, सुधा नहीं हो सकती थी। “नहीं, यहीं ठीक है।” चन्दर बोला।

बिनती गयी। सुधा का पत्र ले आयी। चन्दर का मन जाने कैसा होने लगा। लगता था जैसे अब आँसू नहीं रुकेंगे। उसके मन में सिर्फ इतना आया कि अभी बहतर घंटे पहले सुधा यहीं थी, इस घर की प्राण थी; आज लगता है जैसे इस घर में सुधा थी ही नहीं...

आँगन में अँधेरा होने लगा था। वह उठकर सुधा के कमरे के सामने पड़ी हुई कोच पर बैठ गया और बिनती ने बत्ती जला दी। खत छोटा-सा था—

“डॉक्टर चन्दर बाबू

क्या तुम कभी सोचते थे कि तुम इतनी दूर होगे और मैं तुम्हें खत लिखूँगी। लेकिन खैर!

अब तो घर में चैन की बंसी बजाते होंगे। एक अकेले में ही काँटे-जैसी खटक रही थी, उसे भी तुमने निकाल फेंका। अब तुम्हें न कोई परेशान करता होगा, न तुम्हारे पढ़ने-लिखने में बाधा पहुँचती होगी। अब तो तुम एक महीने में दस-बारह थीसिस लिख डालोगे।

जहाँ दिन में चौबीस घंटे तुम आँख के सामने रहते थे, वहाँ अब तुम्हारे बारे में एक शब्द सुनने के लिए तड़प उठती हूँ। कई दफे तबीयत आती है कि जैसे बिनती से तुम्हारे बारे में बातें करती थी वैसे ही इनसे (तुम्हारे मित्र से) तुम्हारे बारे में बातें करूँ लेकिन ये तो जाने कैसी-कैसी बातें करते हैं।

और सब ठीक है। यहाँ बहुत आजादी है मुझे। माँजी भी बहुत अच्छी हैं। परदा बिल्कुल नहीं करतीं। अपने पूजा के सारे बरतन पहले ही दिन हमसे मँजवाये।

देखो, पापा का ध्यान रखना। और बिनती को जैसे मैं छोड़ आयी हूँ उतनी ही मोटी रहे। मैं महीने-भर बाद आकर तुम्हीं से बिनती को वापस लूँगी, समझे? यह न करना कि मैं न रहूँ तो मेरे बजाय बिनती को रुला-रुलाकर, कुढ़ा-कुढ़ाकर मार डालो, जैसी तुम्हारी आदत है।

चाय ज्यादा मत पीना—खत का जवाब फौरन!

तुम्हारी—सुधा।”

चन्दर ने चिट्ठी एक बार फिर पढ़ी, दो बार पढ़ी, और बार-बार पढ़ता गया। हलके हरे कागज पर छोटे-छोटे काले अक्षर जाने कैसे लग रहे थे। जाने क्या कह रहे थे, छोटे-छोटे अर्थात् कुछ उनमें अर्थ था जो शब्द से भी ज्यादा गम्भीर था। युगों पहले वैयाकरणों ने उन शब्दों के जो अर्थ निश्चित किये थे, सुधा की कलम से जैसे उन शब्दों को एक

नया अर्थ मिल गया था। चन्दर बेसुध-सा तन्मय होकर उस खत को बार-बार पढ़ता गया और किस समय वे छोटे-छोटे नादान अक्षर उसके हृदय के चारों ओर कवच-जैसे बौद्धिकता और सन्तुलन के लौह पत्र को चीरकर अन्दर बिंध गये और हृदय की धड़कनों को मरोड़ना शुरू कर दिया, यह चन्दर को खुद नहीं मालूम हुआ जब तक कि उसकी पलकों से एक गरम आँसू खत पर नहीं टपक पड़ा। लेकिन उसने बिनती से वह आँसू छिपा लिया और खत मोड़कर बिनती को दे दिया। बिनती ने खत लेकर रख लिया और बोली, “अब चलिए खाना खा लीजिए!” चन्दर इनकार नहीं कर सका।

महराजिन ने थाली लगायी और बोली, “भइया, नीचे अबहिन आँगन धोवा जाई, आप जाय के ऊपर खाय लेव।”

चन्दर को मजबूरन ऊपर जाना पड़ा। बिनती ने खाट बिछा दी। एक स्टूल डाल दिया। पानी रख दिया और नीचे थाली लाने चली गयी। चन्दर का मन भारी हो गया था। यह वही जगह है, वही खाट है जिस पर शादी की रात वह सोया था। इसी के पैताने सुधा आकर बैठी थी अपने नये सुहाग में लिपटी हुई-सी। यहीं पर सुधा के आँसू गिरे थे...।

बिनती थाली लेकर आयी और नीचे बैठकर पंखा करने लगी।

“हमारी तबीयत तो है ही नहीं खाने की, बिनती!” चन्दर ने भर्राये हुए स्वर में कहा।

“अरे, बिना खाये-पीये कैसे काम चलेगा? और फिर आप ऐसा करेंगे तो हमारी क्या हालत होगी? दीदी के बाद और कौन सहारा है! खाइए!” और बिनती ने अपने हाथ से एक कौर बनाकर चन्दर को खिला दिया! चन्दर खाने लगा। चन्दर चुप था, वह जाने क्या सोच रहा था। बिनती चुपचाप बैठी पंखा झल रही थी।

“क्या सोच रहे हैं आप?” बिनती ने पूछा।

“कुछ नहीं!” चन्दर ने उतनी ही उदासी से कहा।

“नहीं बताइएगा?” बिनती ने बड़े कातर स्वर से कहा।

चन्दर एक फीकी मुसकान के साथ बोला, “बिनती! अब तुम इतना ध्यान न रखा करो! तुम समझती नहीं, बाद में कितनी तकलीफ होती है। सुधा ने क्या कर दिया है यह वह खुद नहीं समझती!”

“कौन नहीं समझता!” बिनती एक गहरी साँस लेकर बोली, “दीदी नहीं समझती या हम नहीं समझते! सब समझते हैं लेकिन जाने मन कैसा पागल है कि सब कुछ समझकर धोखा खाता है। अरे दही तो आपने खाया ही नहीं।” वह पूड़ी लाने चली गयी।

और इस तरह दिन कटने लगे। जब आदमी अपने हाथ से आँसू मोल लेता है, अपने-आप दर्द का सौदा करता है, तब दर्द और आँसू तकलीफ देह नहीं लगते। और जब कोई ऐसा हो जो आपके दर्द के आधार पर आपको देवता बनाने के लिए तैयार हो और आपके एक-एक आँसू पर अपने सौ-सौ आँसू बिखेर दे, तब तो कभी-कभी तकलीफ भी भली मालूम देने लगती है। लेकिन फिर भी चन्दर के दिन कैसे कट रहे थे यह वही जानता था। लेकिन अकबर के महल में जलते हुए दीपक को देखकर अगर किसी ने जाड़े की रात जमुना के घुटनों-घुटनों पानी में खड़े होकर काट दी, तो चन्दर अगर सुधा के प्यारे-प्यारे खतों के सहारे समय काट रहा था तो कोई ताज्जुब नहीं। अपने अध्ययन में प्रौढ़, अपने विचारों में उदार होने के बावजूद चन्दर अपने स्वभाव में बच्चा था, जिससे जिन्दगी कुछ भी करवा सकती थी बशर्ते जिन्दगी को यह आता हो कि इस भोले-भाले बच्चे को कैसे बहलावा दिया जाये।

बहलावे के लिए मुसकानें ही जरूरी नहीं होती हैं, शायद आँसुओं से मन जल्दी बहल जाता है। बिनती के आँसुओं में चन्दर सुधा की तसवीर देखता था और बहल जाता था। वह रोज शाम को आता और बिनती से सुधा की बातें करता, जाने कितनी बातें, जाने कैसी बातें और बिनती के माध्यम से सुधा में डूबकर चला आता था। चूँकि सुधा के बिना उसका दिन कटना मुश्किल था, एक क्षण कटना मुश्किल था इसलिए बिनती उसकी एक जरूरत बन गयी थी। वह जब तक बिनती से सुधा की बात नहीं कर लेता था, तब तक जैसे वह बेचैन रहता था, तब तक उसकी किसी काम में तबीयत नहीं लगती थी।

जब तक सुधा सामने रही, कभी भी उसे यह नहीं मालूम हुआ कि सुधा का क्या महत्व है उसकी जिन्दगी में। आज जब सुधा दूर थी तो उसने देखा कि सुधा उसकी साँसों से भी ज्यादा आवश्यक थी उसकी जिन्दगी के लिए। लगता था वह एक क्षण सुधा के बिना जिन्दा नहीं रह सकता। सुधा के अभाव में बिनती के माध्यम से वह सुधा को ढूँढ़ता था और जैसे सूरज के डूब जाने पर चाँद सूरज की रोधनी उधार लेकर रात को उजियारा कर देता है, उसी तरह बिनती सुधा की याद से चन्दर के प्राणों पर उजियारी बिखेरती रही। चन्दर बिनती को इस तरह अपनी साँसों की छाँह में दुबकाये रहा जैसे बिनती सुधा का स्पर्श हो, सुधा का प्यार हो।

बिनती भी चन्दर के माथे पर उदासी के बादल देखते ही तड़प उठती थी। लेकिन बिनती चन्दर को हँसा नहीं पायी। चन्दर का पुराना उल्लास लौटा नहीं। साँप का काटा हुआ जैसे लहरें लेता है वैसे ही चन्दर की नसों में फैला हुआ उदासी का जहर रह-रहकर चन्दर को झकझोर देता था। उन दिनों दो-दो तीन-तीन दिन तक चन्दर कुछ नहीं करता था, बिनती के पास भी नहीं जाता था, बिनती के आँसुओं की भी परवाह नहीं करता

था। खाना नहीं खाता था और अपने को जितनी तकलीफ हो सकती थी, देता था। फिर ज्यों ही सुधा का कोई खत आता था, वह उसे चूम लेता और फिर स्वस्थ हो जाता था। बिनती चाहे जितना करे लेकिन चन्दर की इन भयंकर उदासी की लहरों को चन्दर से छीन नहीं पायी थी। चाँद कितनी कोशिश क्यों न करे, वह रात को दिन नहीं बना सकता।

लेकिन आदमी हँसता है, दुःख-दर्द सभी में आदमी हँसता है। जैसे हँसते-हँसते आदमी की प्रसन्नता थक जाती है वैसे ही कभी-कभी रोते-रोते आदमी की उदासी थक जाती है और आदमी करवट बदलता है ताकि हँसी की छाँह में कुछ विश्राम कर फिर वह आँसुओं की कड़ी धूप में चल सके।

ऐसी ही एक सुबह थी जबकि चन्दर के उदास मन में आ रहा था कि वह थोड़ी देर हँस भी ले। बात यों हुई थी कि उसे शैली की एक कविता बहुत पसन्द आयी थी जिसमें शैली ने भारतीय मलयज को सम्बोधित किया है। उसने अपना शैली कीट्स का ग्रन्थ उठाया और उसे खोला तो वही आम के अचार के दाग सामने पड़ गये जो सुधा ने शरारतन डाल दिये थे। बस वह शैली की कविता तो भूल गया और उसे याद आ गयी आम की फाँक और सुधा की शरारत से भरी शोख आँखें। फिर तो एक के बाद दूसरी शरारत प्राणों में उठ-उठकर चन्दर की नसों को गुदगुदाने लगी और चन्दर उस दिन जाने क्यों हँसने के लिए व्याकुल हो उठा। उसे ऐसा लगा जैसे सुधा की यह दूरी, यह अलगाव सभी कुछ झूठ है। सच तो वे सुनहले दिन थे जो सुधा की शरारतों से मुसकराते थे, सुधा के दुलार में जगमगाते थे। और कुछ भी हो जाये, सुधा उसके जीवन का एक ऐसा अमर सत्य है जो कभी भी डगमगा नहीं सकता। अगर वह उदास होता है, दुःखी होता है तो वह गलत है। वह अपने ही आदर्श को झूठा बना रहा है, अपने ही सपने का अपमान कर रहा है। और उसी दिन सुधा का खत भी आया जिसमें सुधा ने साफ-साफ तो नहीं पर इशारे से लिखा था कि वह चन्दर के भरोसे ही किसी तरह दिन काट रही थी। उसने सुधा को एक पत्र लिखा, जिसमें वही शरारत, वही खिझाने की बातें थीं जो वह हमेशा सुधा से करता था, लेकिन जिसे वह पिछले तीन महीने में भूल गया था।

उसके बाद वह बिनती के यहाँ गया।

बिनती अपनी धोती में क्रोशिया की बेल टाँक रही थी। “ले गिलहरी, तेरी दीदी का खत! लाओ, मिठाई खिलाओ।”

“हम काहे को खिलाएँ! आप खिलाइए जो खिले पड़े हैं आज!” बिनती बोली।

“हम! हम क्यों खिलाएँगे! यहाँ तो सुधा का नाम सुनते ही तबीयत कुढ़ जाती है!”

“अरे चलिए, आपका घर मेरा देखा है। मुझसे नहीं बन सकते आप!” बिनती ने

मुँह चिढ़ाकर कहा, “आज बड़े खुश हैं!”

“हाँ, बिनती...” एक गहरी साँस लेकर चन्दर चुप हो गया, “कभी-कभी उदासी भी थक जाती है!” और मुँह झुकाकर बैठ गया।

“क्यों, क्या हुआ?” बिनती ने चन्दर की बाँह में सूई चुभो दी—चन्दर चौंक उठा। “हमारी शकल देखते ही आपके चेहरे पर मुहर्रम छा जाता है!”

“अजी नहीं, आपका मुख-मंडल देखकर तो आकाश में चन्द्रमा भी लज्जित हो जाता होगा, श्रीमती बिनती विदुषी!” चन्दर ने हँसकर कहा। आज चन्दर बहुत खुश था।

बिनती लजा गयी और फिर उसके गालों में फूल के कटोरे खिल गये और उसने चन्दर के कंधे पर फिर सूई चुभोकर कहा, “आपको एक बड़े मजे की बात बतानी है आज!”

“क्या?”

“फिर हँसिएगा मत! और चिढ़ाइएगा नहीं!” बिनती बोली।

“कुछ तेरे ब्याह की बात होगी!” चन्दर ने कहा।

“नहीं, ब्याह की नहीं, प्रेम की!” बिनती ने हँसकर कहा और झेंप गयी।

“अच्छा, गिलहरी को यह रोग कब से?” चन्दर ने हँसकर पूछा, “अपनी माँजी की शकल देखी है न, काटकर कुएँ में फेंक देंगी तुझे!”

“अब क्या करें, कोई सिर पर प्रेम मढ़ ही दे तो!” बिनती ने बड़े आत्मविश्वास से कहा। थी बड़ी खुले स्वभाव की लड़की।

“आखिर कौन अभाग है वह! ज़रा नाम तो सुनें।” चन्दर बोला।

“हमारे महाकवि मास्टर साहब।” बिनती ने हँसकर कहा।

“अच्छा, यह कब से! तूने पहले तो कभी बताया नहीं।”

“अब तो जाकर हमें मालूम हुआ। पहले सोचा दीदी को लिख दें। फिर कहा वहाँ जाने किसके हाथ में चिट्ठी पड़े। तो सोचा तुम्हें बता दें।”

“हुआ क्या आखिर?” चन्दर ने पूछा।

“बात यह हुई कि पहले तो हम दीदी के साथ पढ़ते थे तब तो मास्टर साहब कुछ नहीं बोलते थे, इधर जब से हम अकेले पढ़ने लगे तब से कविताएँ समझाने के बहाने दुनिया-भर की बातें करते रहे। एक बार स्कन्दगुप्त पढ़ाते-पढ़ाते बड़ी ठंडी साँस लेकर बोले, काश कि आप भी देवसेना बन सकतीं। बड़ा गुस्सा आया मुझे। मन में आया कह दूँ कि मैं तो देवसेना बन जाती लेकिन आप अपना कवि सम्मेलन का पेशा छोड़कर स्कन्दगुप्त कैसे बन पाएँगे। लेकिन फिर मैंने कुछ कहा नहीं। दीदी से सब बात कह दी। दीदी तो हैं ही लापरवाह। कुछ कहा ही नहीं उन्होंने। और मास्टर साहब वैसे अच्छे हैं,

पढ़ाते भी अच्छा हैं, लेकिन यह फितूर जाने कैसे उनके दिमाग में चढ़ गया।" बिनती बड़े सहज स्वभाव से बोली।

"लेकिन इधर क्या हुआ?" चन्दर ने पूछा।

"अभी कल आये, एक हाथ में उनके एक मोटी-सी कॉपी थी। दे गये तो देखा वह उनकी कविताओं का संग्रह है और उसका नाम उन्होंने रखा है 'बिनती'। अभी आते होंगे। क्या करें कुछ समझ में नहीं आता। अभी तक दीदी के भरोसे हमने सब छोड़ दिया था। वह पता नहीं कब आएँगी।"

"अच्छा लाओ, वह संग्रह हमें दे दो।" चन्दर ने कहा, "और बिसरिया से कह देना वह चन्दर के हाथ पड़ गया। फिर कल सुबह तुम्हें मजा दिखलाएँगे। लेकिन हाँ, यह पहले बता दो कि तुम्हारा तो कुछ झुकाव नहीं है उधर, वरना बाद में हमें कोसो?" चन्दर ने छेड़ते हुए कहा।

"अरे हाँ, मुसलमान भी हो तो बेहना के संग! कवियों से प्यार लगाकर कौन बवालत पाले!" बिनती ने झेंपते हुए कहा।

दूसरे दिन सुबह पहुँचा तो बिसरिया साहब पढ़ा रहे थे। बिसरिया की शक्ति पर कुछ मायूसी, कुछ परेशानी, कुछ चिन्ता थी। उसको बिनती ने बता दिया कि संग्रह चन्दर के पास पहुँच गया है। चन्दर को देखते ही वह बोला, "अरे कपूर, क्या हाल है?" और उसके बाद अपने निर्दोष के लिए फौरन बोला, "कहो, हमारा संग्रह देखा है?"

"हाँ देखा है, ज़रा आप इन्हें पढ़ा लीजिए। आपसे कुछ ज़रूरी बातें करनी हैं।" चन्दर ने इतने कठोर स्वर में कहा कि बिसरिया के दिल की धड़कनें डूबने-सी लगीं। वह काँपती हुई आवाज में बहुत मुश्किल से अपने को सम्हालते हुए बोला, "कैसी बातें? कपूर, तुम कुछ गलत समझ रहे हो।"

कपूर एक उपेक्षा की हँसी हँसा और चला गया। डॉक्टर साहब पूजा करके उठे थे। दोनों में बातें होती रहीं। उनसे मालूम हुआ कि अगले महीने में सम्भवतः चन्दर की नियुक्ति हो जाएगी और तीन दिन बाद डॉक्टर साहब खुद सुधा को लाने के लिए शाहजहाँपुर जाएँगे। उन्होंने बुआजी को पत्र लिखा है कि यदि वह आ जाएँ तो अच्छा है, वरना चन्दर को दो-तीन दिन बाद यहीं रहना पड़ेगा क्योंकि बिनती अकेली है। चन्दर की बात दूसरी है लेकिन और लोगों के भरोसे डॉक्टर साहब बिनती को अकेले नहीं छोड़ सकते।

अविश्वास आदमी की प्रवृत्तियों को जितना बिगाड़ता है, विश्वास आदमी को उतना ही बनाता है। डॉक्टर साहब चन्दर पर जितना विश्वास करते थे, सुधा चन्दर पर जितना

विश्वास करती थी और इधर बिनती उस पर जितना विश्वास करने लगी थी उसके कारण चन्दर के चरित्र में इतनी दृढ़ता आ गयी थी कि वह फौलाद बन गया था। ऐसे अवसरों पर जब मनुष्य को गम्भीरता उत्तरदायित्व सौंपा जाता है तब स्वभावतः आदमी के चरित्र में एक विचित्र-सा निखार आ जाता है। यह निखार चन्दर के चरित्र में बहुत उभरकर आया था और यहाँ तक कि बुआजी अपनी लड़की पर अविश्वास कर सकती थीं, वह भी चन्दर को देवता ही मानती थीं, बिनती पर और चाहे जो बन्धन हो लेकिन चन्दर के हाथ में बिनती को छोड़कर वे निश्चिन्त थीं।

डॉक्टर साहब और चन्दर बैठे बातें कर ही रहे थे कि बिनती ने आकर कहा, “चलिए, मास्टर साहब आपका इन्तजार कर रहे हैं!” चन्दर उठ खड़ा हुआ। रास्ते में बिनती बोली, “हमसे बहुत नाराज हैं। कहते हैं तुम्हें हम ऐसा नहीं समझते थे!” चन्दर कुछ नहीं बोला। जाकर बिसरिया के सामने कुर्सी पर बैठ गया। “तुम जाओ, बिनती!” बिनती चली गयी तो चन्दर ने कहा, बहुत गम्भीर स्वरों में, “बिसरिया साहब, आपका संग्रह देखकर बहुत खुशी हुई लेकिन मेरे मन में सिर्फ एक शंका है। यह ‘बिनती’ नाम के क्या माने हैं?”

बिसरिया ने अपने गले की टाई ठीक की, वह गरमी में भी टाई लगाता था, और दिन में नाइट कैप पहनता था। टाई ठीक कर, खँखारकर बोला, “मैं भी यही समझता था कि आपको यह गलतफहमी होगी। लेकिन वास्तविक बात यह है कि मुझे मध्यकाल की कविता बहुत पसन्द है, खासतौर में उसमें बिनती (प्रार्थना) शब्द बड़ा मधुर है। मैंने यह संग्रह तो बहुत पहले तैयार किया था। मुझे बड़ा ताज्जुब हुआ जब मैं बिनती से मिला। मैंने उनसे कहा कि यह संग्रह भी बिनती नाम का है। फिर मैंने उन्हें लाकर दिखला दिया।”

चन्दर मुसकराया और मन-ही-मन कहा, ‘हैं बिसरिया बहुत चालाक। लेकिन खैर मैं हार नहीं मान सकता।’ और बहुत गम्भीर होकर बैठ गया।

“तो यह संग्रह इस लड़की के नाम पर नहीं है?”

“बिल्कुल नहीं।”

“और बिनती के लिए आपके मन में कहीं कोई आकर्षण नहीं?”

“बिल्कुल नहीं। छिः, आप मुझे क्या समझते हैं।” बिसरिया बोला।

“छिः, मैं भी कैसा आदमी हूँ, माफ करना बिसरिया! मैंने व्यर्थ में शक किया।”

बिसरिया यह नहीं जानता था कि यह दाँव इतना सफल होगा। वह खुशी से फूल उठा। सहसा चन्दर ने एक गहरी साँस ली।

“क्या बात है चन्दर बाबू?” बिसरिया ने पूछा।

“कुछ नहीं बिसरिया, आज तक मुझे तुम्हारी प्रतिभा, तुम्हारी भावना, तुम्हारी कला पर विश्वास था, आज से उठ गया।”

“क्यों?”

“क्यों क्या? अगर बिनती-जैसी लड़की के साथ रहकर भी तुम उसके आन्तरिक सौन्दर्य से अपनी कला को अभिसिंचित न कर सके तो तुम्हारे मन में कलात्मकता है; यह मैं विश्वास नहीं कर पाता। तुम जानते हो, मैं पुराने विचारों का संकीर्ण, बड़ा बुजुर्ग तो हूँ नहीं, मैं भी भावनाओं को समझता हूँ। मैं सौन्दर्य-पूजा या प्यार को पाप नहीं समझता और मुझे तो बहुत खुशी होती यह जानकर कि तुमने ये कविताएँ बिनती पर लिखी हैं, उसकी प्रेरणा से लिखी हैं। यह मत समझना कि मुझे इससे ज़रा भी बुरा लगता। यह तो कला का सत्य है। पाश्चात्य देशों में तो लोग हर कवि को प्रेरणा देने वाली लड़कियों की खोज में वर्षों बिता देते हैं, उसकी कविता से ज्यादा महत्त्व उसकी कविता के पीछे रहने वाले व्यक्तित्व को देते हैं। हिन्दोस्तान में पता नहीं क्यों हम नारी को इतना महत्त्वहीन समझते हैं, या डरते हैं, या हममें इतना नैतिक साहस नहीं है। तुम्हारा स्वभाव, तुम्हारी प्रतिभा किसी हालत में मुझे विदेश के किसी कवि से कम नहीं लगती। मैंने सोचा था, जब तुम अपनी कविताओं के प्रेरणात्मक व्यक्तित्व का नाम घोषित करोगे तो सारी दुनिया बिनती को और हमारे परिवार को जान जाएगी। लेकिन खैर, मैंने गलत समझा था कि बिनती तुम्हारी प्रेरणा-बिन्दु थी।” और चन्दर चुपचाप गम्भीरता से बिसरिया के संग्रह के पृष्ठ उलटने लगा।

बिसरिया के मन में कितनी उथल-पुथल मची हुई थी। चन्दर का मन इतना विशाल है, यह उसे कभी नहीं मालूम था। यहाँ तो कुछ छिपाने की जरूरत ही नहीं और जब चन्दर इतनी स्पष्ट बातें कर रहा है तो बिसरिया क्यों छिपाये।

“कपूर, मैं तुमसे कुछ नहीं छिपाऊँगा। मैं कह नहीं सकता कि बिनती जी मेरे लिए क्या हैं। शेक्सपियर की मिश्रांडा, प्रसाद की देवसेना, दाँते की बीएत्रिस, कीट्स की फैनी और सूर की राधा से बढ़कर माधुर्य अगर मुझे कहीं मिली है तो बिनती में। इतना, इतना डूब गया मैं बिनती में कि एक कविता भी नहीं लिख पाया। मेरा संग्रह छपने जा रहा था तो मैंने सोचा कि इसका नाम ही क्यों न ‘बिनती’ रखूँ।”

चन्दर ने बड़ी मुश्किल से अपनी हँसी रोकी। दरवाजे के पास छिपी खड़ी हुई बिनती खिलखिलकर हँस पड़ी। चन्दर बोला, “नाम तो ‘बिनती’ बहुत अच्छा सोचा तुमने, लेकिन सिर्फ एक बात है। मेरे जैसे विचार के लोग सभी नहीं होते। अगर घर के और लोगों को यह मालूम हो गया, मसलन डॉक्टर साहब को, तो वह न जाने क्या कर डालेंगे। इन लोगों को कविता और उसकी प्रेरणा का महत्त्व ही नहीं मालूम। उस हालत

में अगर तुम्हारी बहुत बेइज्जती हुई तो न हम कुछ बोल पाएँगे न बिनती। डॉक्टर साहब पुलिस को सौंप दें, यह अच्छा नहीं लगता। वैसे मेरी राय है कि तुम बिनती ही नहीं रखो; बड़ा नया नाम है; लेकिन यह समझ लो कि डॉक्टर साहब बहुत सख्त हैं इस मामले में।”

बिसरिया की समझ में नहीं आता था कि वह क्या करे। थोड़ी देर तक सिर खुजलाता रहा, फिर बोला, “क्या राय है कपूर, तुम्हारी? अगर मैं कोई दूसरा नाम रख दूँ तो कैसा रहेगा?”

“बहुत अच्छा रहेगा और सुरक्षित रहेगा। अभी अगर तुम बदनाम हो गये तो आगे तुम्हारी उन्नति के सभी मार्ग बन्द हो जाएँगे। आदमी प्रेम करे मगर ज़रा सोच-समझकर; मैं तो इस पक्ष में हूँ।”

“भावना को कोई नहीं समझता इस दुनिया में। कोई नहीं समझता, हम कलाकारों की कितनी मुसीबत है।” एक गहरी साँस लेकर बिसरिया बोला, “लेकिन खैर! अच्छा तो कपूर, क्या राय है तुम्हारी? मैं क्या नाम रखूँ इसका?”

चन्दर गम्भीरता से सिर झुकाये थोड़ी देर तक सोचता रहा। फिर बोला, “तुम्हारी कविताओं में बहुत रस है। कैसा रहे अगर तुम इसका नाम ‘गड़ेरियाँ’ रखो!”

“क्या?” बिसरिया ताज्जुब से बोला।

“हाँ-हाँ गड़ेरियाँ, मेरा मतलब है गन्ने की गड़ेरियाँ!” दरवाजे के पीछे बिनती से न रहा गया और खिलखिलाकर हँस पड़ी और सामने आ गयी। चन्दर भी अट्टहास कर पड़ा।

बिसरिया क्षण-भर आँख फाड़े दोनों की ओर देखता रहा। उसके बाद वह ज्यों ही मजाक समझा, उसका चेहरा लाल हो गया। हैट उठाकर बोला, “अच्छा, आप लोग मजाक बना रहे थे मेरा। कोई बात नहीं, मैं देखूँगा। मिस्टर कपूर, आप अपने को क्या समझते हैं?” वह चल दिया।

“अरे, सुनो बिसरिया!” चन्दर ने पुकारा, वह हँसी नहीं रोक पा रहा था। बिसरिया मुड़ा। मुड़कर बोला, “कल से मैं पढ़ाने नहीं आ सकता। मैं आपकी शकल भी नहीं देखना चाहता।” उसने बिनती से कहा।

“तो मुँह फेरकर पढ़ा दीजिएगा।” चन्दर बोला। बिनती फिर हँस पड़ी। बिसरिया ने मुड़कर बड़े गुस्से से देखा और पैर पटकते हुए चला गया।

“बेचारे कवि, कलाकार आज की दुनिया में प्यार भी नहीं कर पाते।” चन्दर ने कहा और दोनों की हँसी बहुत देर तक गूँजती रही।

अगस्त की उदास शाम थी, पानी रिमझिमा रहा था और डॉक्टर शुक्ला के सूने बँगले में बरामदे में कुर्सी डाले, लॉन पर छोटे-छोटे गड़हों में पंख धोती और कुलेलें करती हुई गौरियों की तरफ अपलक देखता हुआ चन्दर जाने किन खयालों में डूबा हुआ था। डॉक्टर साहब सुधा को लिवाने के लिए शाहजहाँपुर गये थे। बिनती भी जिद करके उनके साथ गयी थी। वहाँ से ये लोग दिल्ली घूमने के लिए चले गये थे लेकिन आज पन्द्रह रोज हो गये उन लोगों का कोई भी खत नहीं आया था। डॉक्टर साहब ने ब्यूरो को महज एक अर्जी भेज दी थी। चन्दर को डॉक्टर साहब के जाने के पहले ही कॉलेज में जगह मिल गयी थी और उसने क्लास लेने शुरू कर दिये थे। वह अब इसी बँगले में आ गया था। सुबह तो क्लास के पाठ की तैयारी करने और नोट्स बनाने में कट जाती थी, दोपहर कॉलेज में कट जाती थी लेकिन शामें बड़ी उदास गुजरती थीं और फिर पन्द्रह दिन से सुधा का कोई भी खत नहीं आया। वह उदास बैठा सोच रहा था।

लेकिन यह उदासी थी, दुःख नहीं था। और वह भी उदासी, एक देवता की उदासी जो दुःख भरी न होकर सुन्दर और सुकुमार अधिक होती है। एक बात जरूर थी। जब कभी वह उदास होता था तो जाने क्यों वह यह हमेशा सोचने लगता था कि उसके जीवन में जो कुछ हो गया है उस पर उसे गर्व करना चाहिए जैसे वह अपनी उदासी को अपने गर्व से मिटाने का प्रयास करता था। लेकिन इस वक्त एक बात रह-रहकर उभर आती थी उसके मन में, 'सुधा ने खत क्यों नहीं लिखा?'

पानी बिल्कुल बन्द हो गया था। पश्चिम के दो-एक बादल खुल गये थे। और पके जामुन के रंग के एक बहुत बड़े बादल के पीछे से डूबते हुए सूरज की उदास किरणें झाँक रही थीं। इधर की ओर एक इन्द्रधनुष खिल गया था जो मोटर गैरेज की छत से उठकर दूर पर युक्लिप्टस की लम्बी शाखों में उलझ गया था।

इतने में छाता लगाये पोस्टमैन आया, उसने पोर्टिको में अपने जूतों में लगी कीचड़ झाड़ी, पैर पटके और किरमिच के झोले से खत निकाले और सीढ़ी पर फैला दिये। उनमें से ढूँढ़कर तीन लिफाफे निकाले और चन्दर को दे दिये। चन्दर ने लपककर लिफाफे ले लिये। पहला लिफाफा बुआ का था बिनती के नाम, दूसरा था ओरियंटल इन्श्योरेंस का लिफाफा डॉक्टर साहब के नाम और तीसरा एक सुन्दर-सा नीला लिफाफा। यह सुधा का होगा। पोस्टमैन जा चुका था। उसने इतने प्यार से लिफाफे को चूमा जितने प्यार से डूबता हुआ सूरज नीली घटाओं को चूम रहा था। "पगली कहीं की! परेशान कर डालती है। यहाँ थी तो वही आदत, वहाँ है तो वही आदत!" चन्दर ने मन में कहा और लिफाफा खोल डाला।

लिफाफा पम्मी का था, मसूरी से आया। उसने झल्लाकर लिफाफा फेंक दिया। सुधा कितनी लापरवाह है। वह जानती है कि चन्दर को यहाँ कैसा लग रहा होगा। बिनती ने बता दिया होगा फिर भी वही लापरवाही! मारे गुस्से के...

थोड़ी देर बाद उसने पम्मी का खत पढ़ा। छोटा-सा खत था। पम्मी अभी मसूरी में ही है, अक्टूबर तक आएगी। लगभग सभी यात्री जा चुके हैं लेकिन उसे पहाड़ों की बरसात बहुत अच्छी लग रही है। बर्टी इलाहाबाद चला गया है। उसके साथ वहाँ से एक पहाड़ी ईसाई लड़की भी गयी है। बर्टी कहता है कि वह उसके साथ शादी करेगा। बर्टी अब बहुत स्वस्थ है। चन्दर चाहे तो जाकर बर्टी से मिल ले।

सुधा के खत के न आने से चन्दर के मन में बहुत बेचैनी थी। उसे ठीक से मालूम नहीं हो पा रहा था कि ये लोग हैं कहाँ? बर्टी के आने की खबर मिलने पर उसे सन्तोष हुआ, चलो एक दिन बर्टी से ही मिल आऊँगे, अब देखें कैसे हैं वह?

तीसरे या चौथे दिन जब अकस्मात् पानी बन्द था तो वह कार लेकर बर्टी के यहाँ गया। बरसात में इलाहाबाद की सिविल लाइंस का सौन्दर्य और भी निखर आता है। रूखे-सूखे फुटपाथों और मैदानों पर घास जम जाती है; बँगले की उजाड़ चहारदीवारियाँ तक हरी-भरी हो जाती हैं। लम्बे और घने पेड़ और झाड़ियाँ निखरकर, धुलकर हरे मखमली रंग की हो जाती हैं और कोलतार की सड़कों पर थोड़ी-थोड़ी पानी की चादर-सी लहरा उठती है जिसमें पेड़ों की हरी छायाएँ बिछ जाती हैं। बँगले में पली हुई बत्तखों के दल सड़क पर चलती हुई मोटरों को रोक लेते हैं और हर बँगले में से रेडियो या ग्रामोफोन के संगीत की लहरें मचलती हुई वातावरण पर छा जाती हैं।

कॉलेज से लौटकर, एक प्याला चाय पीकर, कार लेकर चन्दर बर्टी के यहाँ चल दिया। वह बहुत दिन बाद बर्टी को देखने जा रहा है। जिन व्यक्तियों को उसने अपने जीवन में देखा था, बर्टी शायद उन सभी से निराला था, अद्भुत था। लेकिन कितना अभागा था। नहीं, अभागा नहीं कमजोर था बर्टी। और वही क्या कमजोर था यह सारी दुनिया कितनी कमजोर है।

बर्टी का बँगला आ गया था। वह उतरकर अन्दर गया। बाहर कोई नहीं था। बरामदे में एक पिंजरा टँगा हुआ था जिसमें एक बहुत छोटा तोते का बच्चा टँगा था। चन्दर भीतर जाने में हिचक रहा था क्योंकि एक तो पम्मी नहीं थी और दूसरे कोई और लड़की भी बर्टी के साथ आयी थी, बर्टी की भावी पत्नी। चन्दर ने आवाज दी। अन्दर कोई बहुत भारी पुरुष-स्वर में एक साधारण गीत गा रहा था। चन्दर ने फिर आवाज दी। बर्टी बाहर आया। चन्दर उसे देखकर दंग रह गया, बर्टी का चेहरा भर गया था, जवानी लौट आयी

थी, पीलेपन के बजाय चेहरे पर खून दौड़ गया था, सीना उभर आया था। बर्ती खाकी रंग का कोट, बहुत मोटा खाकी हैट, खाकी ब्रिचेज, शिकारी बूट पहने हुए था और कन्धे पर बन्दूक लटक रही थी। वह आया ड्राइंगरूम के दरवाजे पर पीठ झुकाकर एक हाथ से बन्दूक पकड़कर और एक हाथ आँखों के आगे रखकर उसने इस तरह देखा जैसे वह शिकार ढूँढ़ रहा हो। चन्दर के प्राण सूख गये। उसने मन-ही-मन सोचा, पहली बार तो वह कुश्ती में बर्ती से जीत गया था, लेकिन अबकी बार जीतना मुश्किल है। कहाँ बेकार फँसा आकर। उसने घबरायी हुई आवाज में कहा—

“यह मैं हूँ मिस्टर बर्ती, चन्दर कपूर, पम्मी का मित्र!”

“हाँ-हाँ, मैं जानता हूँ।” बर्ती तनकर खड़ा हो गया और हँसकर बोला, “मैं आपको भूला नहीं; मैं तो आपको यह दिखला रहा था कि मैं पागल नहीं हूँ, शिकारी हो गया हूँ।” और उसने चन्दर के कन्धे पकड़कर इतना जोर से झकझोर दिया कि चन्दर की पसलियाँ चरमरा उठीं। “आओ!” उसने चन्दर के कन्धे दबाकर बरामदे की ही कोच पर बिठा दिया और सामने कुर्सी पर बैठता हुआ बोला, “मैं तुम्हें अन्दर ले चलता, लेकिन अन्दर जेनी है और एक मेरा मित्र। दोनों बातें कर रहे हैं। आज जेनी की सालगिरह है। तुम जेनी को जानते हो न? वह तराई के कस्बे में रहती थी। मुझे मिल गयी। बहुत खराब औरत है! मैं तन्दुरुस्त हो गया हूँ न!”

“बहुत, मुझे ताज्जुब है कि तन्दुरुस्ती के लिए तुमने क्या किया तीन महीने तक!”

“नफरत, मिस्टर कपूर! औरतों से नफरत। उससे ज्यादा अच्छा टॉनिक तन्दुरुस्ती के लिए कोई नहीं है।”

“लेकिन तुम तो शादी करने जा रहे हो, लड़की ले आये हो वहाँ से।”

“अकेली लड़की नहीं, मिस्टर! मैं वहाँ से दो चीज लाया हूँ। एक तो यह तोते का बच्चा और एक जेनी, वही लड़की। तोते को मैं बहुत प्यार करता हूँ, यह बड़ा हो जाएगा, बोलने लगेगा तो इसे गोली मार दूँगा और लड़की से मैं बहुत नफरत करता हूँ, इससे शादी कर लूँगा! क्यों, है न ठीक? इसको शिकार का चाव कहते हैं और अब मैं शिकारी हूँ न!”

चन्दर हाँ कहे या न कहे। अभी बर्ती का दिमाग बिल्कुल वैसा ही है, इसमें कोई शक नहीं। वह क्या बात करे? अन्त में बोला—

“यह बन्दूक तो उतारकर रखिए। हमेशा बाँधे रहते हैं!”

“हाँ, और क्या? शिकार का पहला सिद्धान्त है कि जहाँ खतरा हो, जंगली जानवर हों वहाँ कभी बिना बन्दूक के नहीं जाना चाहिए?” और बहुत धीमे से चन्दर के कान में बर्ती बोला, “तुम जानते हो चन्दर, एक औरत है जो चौबीस घंटे घर में रहती है। मैं तो एक क्षण को बन्दूक अलग नहीं रखता।”

सहसा अन्दर से कुछ गिरने की आवाज आयी, कोई चीखा और लगा जैसे कोई चीज पियानो पर गिरी और परदों को तोड़ती हुई नीचे आ गयी। फिर कुछ झगड़ों की आवाज आयी।

चन्दर चौंक उठा, “क्या बात है बर्ती, देखो तो!”

बर्ती ने हाथ पकड़कर चन्दर को खींच लिया—“बैठो, बैठो! अन्दर मेरे मित्र और जेनी सालगिरह मना रहे हैं, अन्दर मत जाना!”

“लेकिन ये आवाजें कैसी हैं?” चन्दर ने चिन्ता से पूछा।

“शायद वे लोग प्रेम कर रहे हों!” बर्ती बोला और निश्चिन्तता से बैठ गया।

और क्षण-भर बाद उसने अजब-सा दृश्य देखा। एक बर्ती का ही हमउम्र आदमी हाथ से माथे का खून पोंछता हुआ आया। वह नशें में चूर था। और बहुत भद्दी गालियाँ देता हुआ चला जा रहा था। वह गिरता-पड़ता आया और उसने बर्ती को देखते ही घूँसा ताना—“तुमने मुझे धोखा दिया। मुझसे पचास रुपये उपहार ले लिया...मैं अभी तुम्हें बताता हूँ।” चन्दर स्तब्ध था। क्या करे क्या न करे? इतने में अन्दर से जेनी निकली। लम्बी-तगड़ी, कम-से-कम तीस वर्ष की औरत। उसने आते ही पीछे से उस आदमी की कमीज पकड़ी और उसे सीढ़ी से नीचे कीचड़ में ढकेल दिया और सैकड़ों गाली देते हुए बोली, “जा सीधे, वरना हड्डी नहीं बचेगी यहाँ।” वह फिर उठा तो खुद भी नीचे कूद पड़ी और घसीटती हुई दरवाजे के बाहर ढकेल आयी।

बर्ती साँस रोके अपराधी-सा खड़ा था। वह लौटी और बर्ती का कालर पकड़ लिया—“मैं निर्दोष हूँ! मैं कुछ नहीं जानता!” सहसा जेनी ने चन्दर की ओर देखा—“हूँ, यह भी तुम्हारा दोस्त है। अभी बताती हूँ?” और जो वह चन्दर की ओर बढ़ी तो चन्दर ने मन-ही-मन पम्मी का स्मरण किया। कहाँ फँसाया उस कम्बख्त ने खत लिखकर। ज्यों ही जेनी ने चन्दर का कालर पकड़ा कि बर्ती बड़े कातर स्वर में बोला, “उसे छोड़ दो! वह मेरा नहीं पम्मी का मित्र है!” जेनी रुक गयी। “तुम पम्मी के मित्र हो? अच्छा बैठ जाओ, बैठ जाओ, तुम शरीफ आदमी मालूम पड़ते हो। मगर आगे से तुम्हारा कोई मित्र आया तो मैं उसकी हत्या कर डालूँगी। समझे कि नहीं, बर्ती?”

बर्ती ने सिर हिलाया, “हाँ, समझ गये!” जेनी अन्दर चल दी, फिर सहसा बाहर आयी और बर्ती को पकड़कर घसीटती हुई बोली, “पानी बरस रहा है, इतनी सर्दी बढ़ रही है और तुमने स्वेटर नहीं पहना, चलो पहनो, मरने की ठानी है। मैं साफ बताये देती हूँ चाहे दुनिया इधर की उधर हो जाये, मैं बिना शादी किये मरने नहीं दूँगी तुम्हें।” और वह बकरे की तरह बर्ती का कान पकड़कर अन्दर घसीट ले गयी।

चन्दर ने मन में कहा, यह कुछ इस रहस्यमय बँगले का असर है कि हरेक का दिमाग खराब ही मालूम देता है। दो मिनट बाद जब बर्टी लौटा तो उसके गले में गुलबन्द, ऊनी स्वेटर, ऊनी मोजे थे। वह हाँफता हुआ आकर बैठ गया।

“मिस्टर कपूर! तुम्हें मानना होगा कि यह लड़की, यह डाइन जेनी बहुत क्रूर है।”

“मानता हूँ, बर्टी! सोलहों आने मानता हूँ।” चन्दर ने मुसकराहट रोककर कहा, “लेकिन यह झगड़ा क्या है?”

“झगड़ा क्या होता है? औरतों को समझना बहुत मुश्किल है।”

“इस औरत के फन्दे में फँसे कैसे तुम?” चन्दर ने पूछा।

“शी! शी!” होठ पर हाथ रखकर धीरे बोलने का इशारा करते हुए बर्टी ने कहा, “धीरे बोलो। बात ऐसी हुई कि जब मैं तराई में शिकार खेल रहा था तो एक बार अकेले छूट गया! यह एक पेंशनर फॉरेस्ट गार्ड की अनब्याही लड़की थी। शिकार में बहुत होशियार। मैं भटकते हुए पहुँचा तो इसका बाप बीमार था। मैं रुक गया। तीसरे दिन वह मर गया। उसे जाने कौन-सा रोग था कि उसका चेहरा बहुत डरावना हो गया था और पेट फूल गया था। रात को इसे बहुत डर लगा तो वह मेरे पास आकर लेट गयी। बीच में बन्दूक रखकर हम लोग सो गये। रात को इसने बीच से बन्दक हटा दी और अब वह कहती है कि मुझसे ब्याह करेगी और नहीं करूँगा तो मार डालेगी। पम्मी भी मुझसे बोली—तुम्हें अब ब्याह करना ही होगा। अब मजबूरी है, मिस्टर कपूर!”

चन्दर चुप बैठा सोच रहा था, कैसी विचित्र जिन्दगी है इस अभागे की! मानो प्रकृति ने सारे आश्चर्य इसी की किस्मत के लिए छोड़ रखे थे। फिर बोला—

“यह आज क्या झगड़ा था?”

“कुछ नहीं। आज इसकी सालगिरह थी। यह बोली, मुझे कुछ उपहार दो। मैं बहुत देर तक सोचता रहा। क्या दूँ इसे? कुछ समझ ही में नहीं आया। बहुत देर सोचने के बाद मैंने सोचा—मैं तो इसका पति होने जा रहा हूँ। इसे एक प्रेमी उपहार में दे दूँ। मैंने एक मित्र से कहा कि तुम मेरी भावी पत्नी से आज शाम को प्रेम कर सकते हो? वह राजी हो गया। मैं ले आया।”

चन्दर जोर से हँस पड़ा।

“हँसो मत, हँसो मत, मिस्टर कपूर!” बर्टी बहुत गम्भीर बनकर बोला, “इसका मतलब यह है कि तुम औरतों को समझते नहीं। देखो, एक औरत उसी चीज को ज्यादा पसन्द करती है, उसी के प्रति समर्पण करती है, जो उसकी जिन्दगी में नहीं होता। मसलन एक औरत है जिसका ब्याह हो गया है, या होने वाला है, उसे यदि एक नया

प्रेमी मिल जाये तो उसकी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहता। वह अपने पति की बहुत कम परवाह करेगी अपने प्रेमी के सामने। और अगर क्वाँरी लड़की है तो वह अपने प्रेमी की भावनाओं की पूरी तौर से हत्या कर सकती है यदि उसे एक पति मिल जाये तो! मैं तो समझता हूँ कि कोई भी पति अपनी पत्नी को यदि कोई अच्छा उपहार दे सकता है तो वह है एक नया प्रेमी और कोई भी प्रेमी अपनी रानी को यदि कोई अच्छा उपहार दे सकता है तो वह यह कि उसे एक पति प्रदान कर दे। तुम्हारी अभी शादी तो नहीं हुई?"

"न!"

"तो तुम प्रेम तो जरूर करते होंगे...न, सिर मत हिलाओ...मैं यकीन नहीं कर सकता...। मैं इतनी सलाह तुम्हें दे रहा हूँ, कि अगर तुम किसी लड़की से प्यार करते हो तो ईश्वर के वास्ते उससे शादी मत करना—तुम मेरा किस्सा सुन चुके हो। अगर दिल से प्यार करना चाहते हो और चहते हो कि वह लड़की जीवन-भर तुम्हारी कृतज्ञ रहे तो तुम उसकी शादी करा देना...यह लड़कियों के सेक्स जीवन का अन्तिम सत्य है...! हा! हा! हा!" बर्ती हँस पड़ा।

चन्दर को लगा जैसे आग की लपट उसे तपा रही है। उसने भी तो यही किया है सुधा के साथ जिसे बर्ती कितने विचित्र स्वयं में कह रहा है। उसे लगा जैसे इस प्रेत-लोक में सारा जीवन विकृत दिखाई देता है। वहाँ साधना की पवित्रता भी कीचड़ और पागलपन में उलझकर गन्दी हो जाती है। छिः, कहाँ बर्ती की बातें और कहाँ उसकी सुधा...

वह उठ खड़ा हुआ। जल्दी से विदा माँगकर इस तरह भागा जैसे उसके पैरों के नीचे अंगारे छिपे हों।

फिर उसे नींद नहीं आयी। चैन नहीं आया। रात को सोया तो वह बार-बार चौंक-सा उठा। उसने सपना देखा, एक बहुत बड़ा कपूर का पहाड़ है। बहुत बड़ा। मुलायम कपूर की बड़ी-बड़ी चट्टानों और इतनी पवित्र खुशबू कि आदमी की आत्मा बेले का फूल बन जाये। वह और सुधा उन सौरभ की चट्टानों के बीच चढ़ रहे हैं। केवल वह है और सुधा...सुधा सफेद बादलों की साड़ी पहने है और चन्दर किरनों की चादर लपेटे है। जहाँ-जहाँ चन्दर जाता है, कपूर की चट्टानों पर इन्द्रधनुष खिल जाते हैं और सुधा अपने बादलों के आँचल में इन्द्रधनुष के फूल बटोरती चलती है।

सहसा एक चट्टान हिली और उसमें से एक भयंकर प्रेत निकला। एक सफेद कंकाल—जिसके हाथ में अपनी खोपड़ी और एक हाथ में जलती मशाल और उस मुंडहीन कंकाल ने खोपड़ी हाथ में लेकर चन्दर को दिखाई। खोपड़ी हँसी और बोली, "देखो, जिन्दगी का अन्तिम सत्य यह है। यह!" और उसने अपने हाथ की मशाल

ऊँची कर दी। "यह कपूर का पहाड़, यह बादलों की साड़ी, यह किरनों का परिधान, यह इन्द्रधनुष के फूल, यह सब झूठे हैं। और यह मशाल, जो अपने एक स्पर्श में इन सबको पिघला देगी।"

और उसने अपनी मशाल एक ऊँचे शिखर से छुआ दी। वह शिखर धधक उठा। पिघलती हुई आग की एक धार बरसाती नदी की तरह उमड़कर बहने लगी।

"भागो, सुधा!" चन्दर ने चीखकर कहा, "भागो!"

सुधा भागी, चन्दर भागा और वह पिघली हुई आग की महानदी लहराते हुए अजगर की तरह उन्हें अपनी गुंजलिका में लपेटने के लिए चल पड़ी। शैतान हँस पड़ा, "हा! हा! हा!" चन्दर ने देखा, सुधा शैतान की गोद में थी।

चन्दर चौंककर जाग गया। पानी बन्द था लेकिन घनघोर अँधेरा था। और पिशाचनी की तरह पागल हवा पेड़ों को झकझोर रही थी जैसे युग के जमे हुए विश्वासों को उखाड़ फेंकना चाहती हो। चन्दर काँप रहा था, उसका माथा पसीने से तर था।

वह उठकर नीचे आया। उसके कदम ठीक नहीं पड़ रहे थे। बरामदे की बत्ती जलायी। महाराजिन उठी—"का है भइया!" उसने पूछा।

"कुछ नहीं, अन्दर सोऊँगा।" चन्दर ने कहा और सुधा के कमरे में जाकर बत्ती जलायी। सुधा की चारपाई पर लेट गया। फिर उठा, चारों ओर के दरवाजे बन्द कर दिये कि कहीं कोई फिर ऐसा सपना बाहर के भयंकर अँधेरे में से न चला आये।

लेकिन बर्ती की बातों से अन्दर-ही-अन्दर उसके मन में जाने कहाँ क्या टूट गया जो फिर बन नहीं पाया। अभी तक उसे अपने पर गर्व था, विश्वास था, अब कभी-कभी वह अपने व्यक्तित्व का विश्लेषण करने लगा था। अब वह कभी-कभी अपने विश्वासों पर सिर ऊँचा करने के बजाय उन्हें सामने फेंक देता और एक निरपेक्ष वैज्ञानिक की तरह उनकी चीर-फाड़ करता, उनकी शव-परीक्षा किया करता। अभी तक उसके विश्वास का सम्बल था, अब किसी ने उसे तर्क का अस्त्र-शस्त्र दे दिया था। जाने किस राक्षसी प्रेरणा से उसने अपनी आत्मा को चीरना शुरू किया। और इस तर्क-वितर्क और अविश्वास के भयंकर जल-प्रलय की एक लहर ने उसे एक दिन नरक के किनारे ले जा पटका।

सुधा का खत आया था। दिल्ली में पापा अपने कुछ काम से रुके थे और सुधा की तबीयत खराब हो गयी थी। अब वह दो-तीन रोज में आ आएगी।

लेकिन चन्दर के मन पर एक अजब-सा असर हुआ था इस खत का। सुधा का पत्र नहीं आया था, सुधा दूर थी तब वह खुश था, वह उल्लसित था। सुधा का पत्र आते

ही सहसा वह उदास हो गया। उदास तो क्या उसे उबकाई-सी आने लगी। उसे यह सब सहसा, पता नहीं एक नाटक-सा लगने लगा था, एक बहुत सस्ता, नीचे स्तर का नाटक। उसे लगता था—ये सब चारों ओर का त्याग, साधन, सौन्दर्य, यह सब झूठ है। सुधा भी अन्ततोगत्वा वही साधारण लड़की है जो क्वारै जीवन में पति और विवाहित जीवन में प्रेमी की भूखी होती है।

वह भी शैतान से पूर्णतया हारा नहीं था। वह लड़ने की कोशिश करता था। लेकिन वह हार रहा था, यह भी उसे मालूम था। और चन्दर के जिस गर्व ने उसकी जीत में साथ दिया था, वही गर्व उसकी हार में साथ दे रहा था। उसने मन में सोच लिया कि वह सुधा से, सभी लड़कियों से, इस सारे नाटक से नफरत करता है। सुधा का विवाह होना ही था, सुधा को विवाह करना था, सुधा के आँसू झूठे थे, अगर चन्दर सुधा को न भी समझाता तो घूम-फिर सुधा विवाह करती ही।

तब फिर विश्वास काहे का? त्याग काहे का?

विश्वास टूट चुका था, गर्व जिन्दा था, गर्व घमंड में बदल गया था, घमंड नफरत में, और नफरत नसों को चूर-चूर कर देने वाली उदासी में।

सुधा जब आयी तो उसने चन्दर को बिल्कुल बदला हुआ पाया। एक बात और हुई जिसने और भी आग सुलगा दी। यह लोग दोपहर को एक बजे के लगभग आये जबकि चन्दर कॉलेज गया था। पापा तो आते ही नहा-धोकर सोने चले गये। सुधा और बिनती ने आते ही अपने कमरे की सफाई शुरू की; कमरे की सारी किताबें झाड़ीं, कपड़े ठीक किये, मेजें साफ कीं और उसके बाद कमरा धोने में लग गयीं। बिनती बाल्टी में पानी भर-भर लाने लगी और सुधा झाड़ू से फर्श धोने लगी। हाथों में चूड़े अब भी थे, पाँव में बिछिया और माँग में सिन्दूर—चेहरा बहुत पीला पड़ गया था सुधा का; चेहरे की हड्डियाँ निकल आयी थीं और आँखों की रोशनी भी मैली पड़ गयी थी। वह जाने क्यों कमजोर भी हो गयी थी।

झाड़ू लगाते-लगाते सुधा बिनती से बोली, “आज मालूम पड़ता है कि मैं आदमी हूँ? कल तक तो हैवान थी। पापा को भी जाने क्या सूझा कि इन्हें भी साथ दिल्ली ले गये। मैं तो शरम से मरी जाती थी।”

थोड़ी देर बाद चन्दर आया। बाहर ही उसे मालूम हो गया था कि सब लोग आ गये हैं। उसे जाने क्यों ऐसा लग रहा था कि वह उलटे लौट जाये, वह अगर इस घर में गया तो जाने उससे क्या अनर्थ हो जाएगा, लेकिन वह बढ़ता ही गया। स्टडी-रूम में डॉक्टर साहब सो रहे थे। वह लौटा और अपने कपड़े उतारने के लिए ड्राइंग-रूम की ओर

चला। सुधा ने ज्यों ही आहट पायी, वह फौरन झाड़ू फेंककर भागी, सिर खुला, धोती कमर से खुँसी हुई, हाथ गन्दे, बाल बिखरे और बेतहाशा दौड़कर चन्दर से लिपट गयी और बच्चों की भोली हँसी हँसकर बोली, “चन्दर, चन्दर! हम आ गये, अब बताओ?” और चन्दर को इस तरह कस लिया कि अब कभी छोड़ेगी नहीं।

“छिः, दूर हटो, सुधा! यह क्या नाटक करती हो!” और सुधा को रुखाई से परे हटाकर अपने कोट पर से सुधा के हाथ से लगी हुई मिट्टी झाड़ने हुए चन्दर चुपचाप अपने कमरे में चला गया।

सुधा पर जैसे बिजली गिर पड़ी हो। वह पत्थर की तरह खड़ी रही। फिर जैसे लड़खड़ाती हुई अपने कमरे में गयी और चारपाई पर लेटकर फूट-फूटकर रोने लगी। चन्दर सुधा से नहीं बोला। डॉक्टर साहब के जगते ही उनसे बातें करने लगा, शाम को वह साइकिल लेकर घूमने निकल गया। लौटकर ऊपर छत पर चला गया और बिनती को पुकारकर कहा, “अगर तकलीफ न हो तो ज़रा ऊपर खाना दे जाओ।” बिनती ने थाली लगायी और सुधा से कहा, “लो दीदी! दे आओ!” सुधा ने सिर हिलाकर कहा, “तू ही दे आ! मैं अब कौन रह गयी उनकी।” बिनती के बहुत समझाने पर सुधा ऊपर खाना ले गयी। चन्दर लेटा था गुमसुम। सुधा ने स्टूल खींचकर खाना रखा। चन्दर कुछ नहीं बोला। उसने पानी रखा। चन्दर कुछ नहीं बोला।

“खाओ न!” सुधा ने कहा और एक कौर बनाकर चन्दर को देने लगी।

“तुम जाओ!” चन्दर ने बड़े रूखे स्वर में कहा, “मैं खा लूँगा!”

सुधा ने कौर थाली में रख दिया और चन्दर के पायताने बैठकर बोली, “चन्दर, तुम क्यों नाराज हो, बताओ हमसे क्या पाप हो गया है? पिछले डेढ़ महीने हमने एक-एक क्षण गिन-गिनकर काटे हैं कि कब तुम्हारे पास आएँ। हमें क्या मालूम था कि तुम ऐसे हो गये हो। मुझे जो चाहे सजा दे लो लेकिन ऐसा न करो। तुम तो कुछ भी नहीं समझते।” और सुधा ने चन्दर के पैरों पर सिर रख दिया। चन्दर ने पैर झटक दिये, “सुधा, इन सब बातों से फायदा नहीं है। अब इस तरह की बातें करना और सुनना मैं भूल गया हूँ। कभी इस तरह की बातें करते अच्छा लगता था। अब तो किसी सोहागिन के मुँह से यह शोभा नहीं देता!”

सुधा तिलमिला उठी, “तो यह बात है तुम्हारे मन में! मैं पहले से समझती थी। लेकिन तुम्हीं ने तो कहा था, चन्दर! अब तुम्हीं ऐसे कह रहे हो? शरम नहीं आती तुम्हें।” और सुधा ने हाथ से ब्याह वाले चूड़े उतारकर छत पर फेंक दिये, बिछिया उतारने लगी—और पागलों की तरह फटी आवाज में बोली, “जो तुमने कहा, मैंने किया,

अब जो कहोगे वह करूँगी। यही चाहते हो न!" और अन्त में उसने अपनी बिछिया उतारकर छत पर फेंक दी।

चन्दर काँप गया। उसने इस दृश्य की कल्पना भी नहीं की थी। "बिनती! बिनती!" उसने घबराकर पुकारा और सुधा से बोला, "अरे, यह क्या कर रही हो! कोई देखेगा तो क्या सोचेगा! पहनो जल्दी से।"

"मुझे किसी की परवाह नहीं। तुम्हारा तो जी ठंडा पड़ जाएगा!"

चन्दर उठा। उसने जबरदस्ती सुधा के हाथ पकड़ लिये। बिनती आ गयी थी।

"लो, इन्हें चूड़े तो पहना दो!" बिनती ने चुपचाप चूड़े और बिछिया पहना दी। सुधा चुपचाप उठी और नीचे चली गयी।

चन्दर अपनी खाट पर सिर झुकाये लज्जित-सा बैठा था।

"लीजिए, खाना खा लीजिए।" बिनती बोली।

"मैं नहीं खाऊँगा।" चन्दर ने रुंधे गले से कहा।

"खाइए, वरना अच्छी बात नहीं होगी। आप दोनों मिलकर मुझे मार डालिए बस किस्सा खत्म हो जाए। न आप सीधे मुँह से बोलते हैं, न दीदी। पता नहीं आप लोगों को क्या हो गया है?"

चन्दर कुछ नहीं बोला।

"खाइए, आपको हमारी कसम है। वरना दीदी खाना नहीं खाएँगी! आपको मालूम नहीं, दीदी की तबीयत इधर बहुत खराब है। उन्हें सुबह-शाम बुखार रहता है। दिल्ली में तबीयत बहुत खराब हो गयी थी। आप ऐसे कर रहे हैं। बताइए, उनका क्या हाल होगा। आप समझते होंगे यह बहुत सुखी होंगी लेकिन आपको क्या मालूम!... पहले आप दीदी के एक आँसू पर पागल हो उठते थे, अब आपको क्या हो गया है?"

चन्दर ने सिर उठाया—और गहरी साँस लेकर बोला—"जाने क्या हो गया है, बिनती! मैं कभी नहीं सोचता था कि सुधा को मैं इतना दुःख दे सकूँगा। इतना अभागा हूँ कि मैं खुद भी इधर घुलता रहा और सुधा को भी इतना दुःखी कर दिया। और सचमुच चन्दर की आँखों में आँसू भर आये। बिनती चन्दर के पीछे खड़ी थी। चन्दर का सिर अपनी छाती में लगाकर आँसू पोंछती हुई बोली, "छिः, अब और दुःखी होइएगा तो दीदी और भी रोएँगी। लीजिए, खाइए!"

"जाओ, दीदी को बुला लो और उन्हें भी खिला दो!" चन्दर ने कहा। बिनती गयी। फिर लौटकर बोली, "बहुत रो रही हैं। अब आज उनका नशा उतर जाने दीजिए, तब कल बात कीजिएगा।"

"फिर सुधा ने न खाया तो?"

“नहीं, आप खा लीजिएगा तो वे खा लेंगी। उनको खिलाए बिना मैं नहीं खाऊँगी।” बिनती बोली और अपने हाथ से कौर बनाकर चन्दर को देने लगी। चन्दर ने खाना शुरू किया और धीरे-से गहरी साँस लेकर बोला, “बिनती! तुम हमारी और सुधा की उस जनम की कौन हो?”

सुबह के वक्त चन्दर जब नाश्ता करने बैठा तो डॉक्टर साहब के साथ ही बैठा। सुधा आयी और प्याला रखकर चली गयी। वह बहुत उदास थी। चन्दर का मन भर आया। सुधा की उदासी उसे कितना लज्जित कर रही थी, कितनी दुःखी कर रही थी। दिन-भर किसी काम में उसकी तबीयत नहीं लगी। उसने क्लास छोड़ दिये। लाइब्रेरी में भी जाकर किताबें उलट-पलटकर चला आया। उसके बाद प्रेस गया जहाँ उसे अपनी थ्रीसिस छपने को देनी थी, उसके बाद ठाकुर साहब के यहाँ गया। लेकिन कहीं भी वह टिक नहीं पाया। जब तक वह सुधा को हँसा न ले, सुधा के आँसू सुखा न दे; उसे चैन नहीं मिलेगा।

शाम को वह लौटा तो खाना तैयार था। बिनती से उसने पूछा, “कहाँ है सुधा?” “अपनी छत पर।” बिनती ने कहा। चन्दर ऊपर गया। पानी परसों से बन्द था और बादल भी खुले हुए थे लेकिन तेज पुरवैया चल रही थी। तीज का चाँद शरमीली दुल्हन-सा बादलों में मुँह छिपा रहा था। हवा के तेज झकोरों पर बादल उड़ रहे थे और कचनार बादलों में तीज का धनुषाकार चाँद आँखमिचौली खेल रहा था। सुधा ने अपनी खाट बरसाती के बाहर खींच ली थी। छत पर धुंधला अँधेरा था और रह-रहकर सुधा पर चाँदनी के फूल बरस जाते थे। सुधा चुपचाप लेटी हुई बादलों को देखती हुई जाने क्या सोच रही थी।

चन्दर गया। चन्दर को देखते ही सुधा उठ खड़ी हुई और उसने बिजली जला दी और चुपचाप बैठ गयी। चन्दर बैठ गया। वह कुछ भी नहीं बोली। बगल में बिछी हुई बिनती की खाट पर सुधा बैठ गयी।

चन्दर को समझ नहीं आता था कि वह क्या कहे। सुधा को इतना दुःख दिया उसने। सुधा उससे कल शाम से बोली तक नहीं।

“सुधा तुम नाराज हो गयीं! मुझे जाने क्या हो गया था। लेकिन माफ नहीं करोगी?” चन्दर ने बहुत काँपती हुई आवाज में कहा। सुधा कुछ नहीं बोली—चुपचाप बादलों की ओर देखती रही।

“सुधा?” चन्दर ने सुधा के दो कबूतरों जैसे उजले मासूम पैरों को लेकर अपनी गोद में रख लिया और भरे हुए गले से बोला, “सुधा, मुझे जाने क्या हो जाता है कभी-कभी! लगता है वह पहले वाली ताकत टूट गयी। मैं बिखर रहा हूँ। तुम आयीं और तुम्हारे सामने

मन का जाने कौन-सा तूफान फूट पड़ा! तुमने उसका इतना बुरा मान लिया। बताओ, अगर तुम ही ऐसा करोगी तो मुझे सँभालने वाला फिर कौन है, सुधा?" और चन्दर की आँखों से एक बूँद आँसू सुधा के पाँवों पर चू पड़ा। सुधा ने चौंककर अपने पाँव खींच लिये। और उठकर चन्दर की खाट पर बैठ गयी और चन्दर के कन्धे पर सिर रखकर फूट-फूटकर रो पड़ी। बहुत रोयी...बहुत रोयी। उसके बाद उठी और सामने बैठ गयी।

"चन्दर! तुमने गलत नहीं किया। मैं सचमुच कितनी अपराधिन हूँ। मैंने तुम्हारी जिन्दगी चौपट कर दी है। लेकिन मैं क्या करूँ? किसी ने तो मुझे कोई रास्ता नहीं बताया था। अब हो ही क्या सकता है, चन्दर! तुम भी बर्दाश्त करो और हम भी करें।" चन्दर नहीं बोला। उसने सुधा के हाथ अपने होंठों से लगा लिये। "लेकिन मैं तुम्हें इस तरह बिखरने नहीं दूँगी। तुमने अब अगर इस तरह किया तो अच्छी बात नहीं होगी। फिर हम तो बराबर हर पल तुम्हारे ही बारे में सोचते रहे और तुम्हारी ही बातें सोच-सोचकर अपने को धीरज देते रहे और तुम इस तरह करोगे तो..."

"नहीं सुधा, मैं अपने को टूटने नहीं दूँगा। तुम्हारा प्यार मेरे साथ है। लेकिन इधर मुझे जाने क्या हो गया था!"

"हाँ, समझ लो, चन्दर! तुम्हें हमारे सुहाग की लाज है, हम कितने दुःखी हैं, तुम समझ नहीं सकते। एक तुम्हीं को देखकर हम थोड़ा-सा दुःख-दर्द भूल जाते हैं, सो तुम भी इस तरह करने लगे! हम लोग कितने अभागे हैं!" और वह फिर चुपचाप लेटकर ऊपर देखती हुई जाने क्या सोचने लगी। चन्दर ने एक बार धुँधली रेशमी चाँदनी में मुरझाये हुए सोनजुही के फूल-जैसे मुँह की ओर देखा और सुधा के नरम गुलाबी होंठों पर उँगलियाँ रख दीं। थोड़ी देर वह आँसू में भीगे हुए गुलाब की दुःख-भरी पंखुरियों से उँगलियाँ उलझाये रहा और फिर बोला—

"क्या सोच रही थीं?" चन्दर ने बहुत दुलार से सुधा के माथे पर हाथ फेरकर कहा। सुधा एक फीकी हँसी हँसकर बोली—

"जैसे आज लेटी हुई बादलों को देख रही हूँ और पास तुम बैठे हो, उसी तरह एक दिन कॉलेज में दोपहर को मैं और गेसू लेटे हुए बादलों को देख रहे थे। उस दिन उसने एक शेर सुनाया। 'कैफ बरदोश बादलों को न देख, बेखबर तू कुचल न जाए कहीं।' उसका कहना कितना सच निकला! भाग्य ने कहाँ ले जा पटका मुझे!"

"क्यों, वहाँ तुम्हें कोई तकलीफ तो नहीं?" चन्दर ने पूछा।

"हाँ, समझते तो सब यही हैं लेकिन जो तकलीफ है वह मैं जानती हूँ या बिनती जानती है।" सुधा ने गहरी साँस लेकर कहा, "वहाँ आदमी भी बने रहने का अधिकार नहीं।"

"क्यों?" चन्दर ने पूछा।

“क्या बताएँ तुम्हें चन्दर! कभी-कभी मन में आता है कि डूब मरूँ। ऐसा भी जीवन होगा मेरा, यह कभी मैं नहीं सोचती थी।” सुधा ने कहा।

“क्या बात है? बताओ न।” चन्दर ने पूछा।

“बता दूँगी, देवता! तुमसे भला क्या छिपाऊँगी लेकिन आज नहीं, फिर कभी!”

सुधा ने कहा, “तुम परेशान मत हो। कहाँ तुम, कहाँ दुनिया! काश कि कभी तुम्हारी गोद से अलग न होती मैं!” और सुधा ने अपना मुँह चन्दर की गोद में छिपा लिया। चाँदनी पंखरियाँ बरस पड़ीं।

उल्लास और रोशनी का मलय पवन फिर लौट आया था, फिर एक बार चन्दर, सुधा और बिनती के प्राणों को विभोर कर गया था कि सुधा को महीने-भर बाद ही जाना है और सुधा भूल गयी थी कि शाहजहाँपुर से भी उसका कोई नाता है। बिनती का इम्तहान हो गया था और अक्सर चन्दर और सुधा बिनती के ब्याह के लिए गहने और कपड़े खरीदने जाते। जिन्दगी फिर खुशी के हिलकोरों पर झूलने लगी थी। बिनती का ब्याह उतरते अगहन में होने वाला था। अब दो-ढाई महीने रह गये थे। सुधा और चन्दर जाकर कपड़े खरीदते और लौटकर बिनती को जबरदस्ती पहनाते और गुड़िया की तरह उसे सजाकर खूब हँसते। दोनों के बड़े-बड़े हौसले थे बिनती के लिए। सुधा बिनती को सलवार और चुन्नी का एक सेट और गरारा और कुरते का एक सेट देना चाहती थी। चन्दर बिनती को हीरे की एक अँगूठी देना चाहता था। चन्दर बिनती को बहुत स्नेह करने लगा था। वह बिनती के ब्याह में भी जाना चाहता था लेकिन गाँव का मामला, कान्यकुब्जों की बारात। शहर में सुधा, बिनती और चन्दर को जितनी आजादी थी उतनी वहाँ भला क्योंकर हो सकती थी! फिर कहने वालों की जबान, कोई क्या कह बैठे! यही सब सोचकर सुधा ने चन्दर को मना कर दिया। इसीलिए चन्दर यहीं बिनती को जितने उपहार और आशीर्वाद देना चाहता था, दे रहा था। सुधा का बचपन लौट आया और दिन-भर उसकी शरारतों और किलकारियों से घर हिलता था। सुधा ने चन्दर को इतनी ममता में डुबो लिया था कि एक क्षण वह चन्दर को अपने से अलग नहीं रहने देती थी। जितनी देर चन्दर घर में रहता, सुधा उसे अपने दुलार में, अपनी साँसों की गरमाई में समेटे रहती थी, चन्दर के माथे पर हर क्षण वह जाने कितना स्नेह बिखेरती रहती थी!

एक दिन चन्दर आया तो देखा कि बिनती कहीं गयी है और सुधा चुपचाप बैठी हुई बहुत-से पुराने खतों को सँभाल रही है। एक गम्भीर उदासी का बादल घर में छाया

हुआ है। चन्दर आया। देखा, सुधा आँख में आँसू भरे बैठी है।

“क्या बात है, सुधा?”

“रुखसती की चिट्ठी आ गयी चन्दर, परसों शंकरबाबू आ रहे हैं।”

चन्दर के हृदय की धड़कनों पर जैसे किसी ने हथौड़ा मार दिया। वह चुपचाप बैठ गया। “अब सब खत्म हुआ, चन्दर!” सुधा ने बड़ी ही करुण मुस्कान से कहा, “अब साल-भर के लिए विदा और उसके बाद जाने क्या होगा?”

चन्दर कुछ नहीं बोला। वहीं लेट गया और बोला, “सुधा, दुःखी मत हो। आखिर कैलाश इतना अच्छा है, शंकरबाबू इतने अच्छे हैं। दुःख किस बात का? रहा मैं तो अब मैं सशक्त रहूँगा। तुम मेरे लिए मत घबराओ!”

सुधा एकटक चन्दर की ओर देखती रही। फिर बोली, “चन्दर! तुम्हारे जैसे सब क्यों नहीं होते? तुम सचमुच इस दुनिया के योग्य नहीं हो! ऐसे ही बने रहना, चन्दर मेरे! तुम्हारी पवित्रता ही मुझे जिन्दा रख सकेगी वरना मैं तो जिस नरक में जा रही हूँ...”

“तुम उसे नरक क्यों कहती हो! मेरी समझ में नहीं आता!”

“तुम नहीं समझ सकते। तुम अभी बहुत दूर हो इन सब बातों से, लेकिन...” सुधा बड़ी देर तक चुप रही। फिर खत सब एक ओर खिसका दिये और बोली, “चन्दर, उनमें सब कुछ है। वे बहुत अच्छे हैं, बहुत खुले विचार के हैं, मुझे बहुत चाहते हैं, मुझ पर कहीं से कोई बन्धन नहीं, लेकिन इस सारे स्वर्ग का मोल जो देकर चुकाना पड़ता है उससे मेरी आत्मा का कण-कण विद्रोह कर उठता है।” और सहसा घुटनों में मुँह छिपाकर रो पड़ी।

चन्दर उठा और सुधा के माथे पर हाथ रखकर बोला, “छिः, रोओ मत सुधा! अब तो जैसा है, जो कुछ भी है, बर्दाश्त करना पड़ेगा।”

“कैसे करूँ, चन्दर! वह इतने अच्छे हैं और इसके अलावा इतना अच्छा व्यवहार करते हैं कि मैं उनसे क्या कहूँ? कैसे कहूँ?” सुधा बोली।

“जाने दो सुधी, जैसे जिन्दगी हो वैसा निबाह करना चाहिए, इसी में सुन्दरता है। और जहाँ तक मेरा खयाल है वैवाहिक जीवन के प्रथम चरण में ही यह नशा रहता है, फिर किसको यह सूझता है। आओ, चलो चाय पीएँ! उठो, पागलपन नहीं करते। परसों चली जाओगी, रुलाकर नहीं जाना होता। उठो!” चन्दर ने अपने मन की जुगुप्सा पीकर ऊपर से बहुत स्नेह से कहा।

सुधा उठी और चाय ले आयी। चन्दर ने अपने हाथ से एक कप में चाय बनायी और सुधा को पिलाकर उसी में पीने लगी। चाय पीते-पीते सुधा बोली—

“चन्दर, तुम ब्याह मत करना! तुम इसके लिए नहीं बने हो।”

चन्दर सुधा को हँसाना चाहता था—“चल स्वार्थी कहीं की! क्यों न करूँ ब्याह! जरूर करूँगा! और जनाब, दो-दो करूँगा! अपने आप तो कर लिया और मुझे उपदेश दे रही हैं।”

सुधा हँस पड़ी। चन्दर ने कहा—

“बस ऐसे ही हँसती रहना हमेशा, हमारी याद करके और अगर रोयी तो समझ लो हम उसी तरह फिर अशान्त हो उठेंगे जैसे अभी तक थे!...” फिर प्याला सुधा के हाँठों से लगाकर बोला, “अच्छा सुधी, कभी तुम सुनो कि मैं उतना पवित्र नहीं रहा जितना कि हूँ तो तुम क्या करोगी? कभी मेरा व्यक्तित्व अगर बिगड़ गया, तब क्या होगा?”

“होगा क्या? मैं रोकने वाली कौन होती हूँ! मैं खुद ही क्या रोक पायी अपने को! लेकिन चन्दर, तुम ऐसे ही रहना। तुम्हें मेरे प्राणों की सौगन्ध है, तुम अपने को बिगाड़ना मत।”

चन्दर हँसा, “नहीं सुधा, तुम्हारा प्यार मेरी ताकत है। मैं कभी गिर नहीं सकता जब तक तुम मेरी आत्मा में गुँथी हो।”

तीसरे दिन शंकरबाबू आये और सुधा चन्दर के पैरों की धूल माथे पर लगाकर चली गयी... इस बार वह रोयी नहीं, शान्त थी जैसे वधस्थल पर जाता हुआ बेबस अपराधी।

जब तक आसमान में बादल रहते हैं तब तक झील में बादलों की छाँह रहती है। बादलों के खुल जाने के बाद कोई भी झील उनकी छाँह को सुरक्षित नहीं रख पाती। जब तक सुधा थी, चन्दर की जिन्दगी का फिर एक बार उल्लास और उसकी ताकत लौट आयी थी, सुधा के जाते ही वह फिर सब कुछ खो बैठा। उसके मन में कोई स्थायित्व नहीं रहा। लगता था जैसे वह एक जलागार है जो बहुत गहरा है, लेकिन जिसमें हर चाँद, सूरज, सितारे और बादल की छाँह पड़ती है और उनके चले जाने के बाद फिर वह उनका प्रतिबिम्ब धो डालता है और बदलकर फिर वैसा ही हो जाता है। कोई भी चीज पानी को रँग नहीं पाती, उसे छू नहीं पाती, हाँ, लहरों में उनकी छाया का रूप विकृत हो जाता है।

चन्दर को चारों ओर की दुनिया सहज गुजरते हुए बादलों का निस्सार तमाशा-सी लग रही थी। कॉलेज की चहल-पहल, ढलती हुई बरसात का पानी, थीसिस और डिग्री, बर्ती का पागलपन और पम्मी के खत—ये सभी उसके सामने आते और सपनों की तरह गुजर जाते। कोई चीज उसके हृदय को छू न पाती। ऐसा लगता था कि चन्दर एक खोखला व्यक्ति है जिसमें सिर्फ एक सापेक्ष अन्तःकरण मात्र है, कोई निरपेक्ष आत्मा नहीं और हृदय भी जैसे समाप्त हो गया था। एक जलहीन हल्के बादल की तरह वह

हवा के हर झोंके पर तैर रहा था। लेकिन टिकता कभी भी नहीं था। उसकी भावनाएँ, उसका मन, उसकी आत्मा, उसके प्राण, उसका सब कुछ सो गया था और वह जैसे नींद में चल-फिर रहा था, नींद में सब कुछ कर रहा था। जाने के आठ-नौ रोज बाद सुधा का खत आया—

“मेरे भाग्य!

मैं इस बार तुम्हें जिस तरह छोड़ आयी हूँ उससे मुझे पल-भर को चैन नहीं मिलता। अपने को तो बेच चुकी, अपने मन के मोती को कीचड़ में फेंक चुकी, तुम्हारी रोशनी को ही देखकर कुछ सन्तोष है। मेरे दीपक, तुम बुझना मत। तुम्हें मेरे स्नेह की लाज है।

मेरी जिन्दगी का नरक फिर मेरे अंगों में भिदना शुरू हो गया है। तुम कहते हो कि जैसे हो निबाह करना चाहिए। तुम कहते हो कि अगर मैंने उनसे निबाह नहीं किया तो यह तुम्हारे प्यार का अपमान होगा। ठीक है, मैं अपने लिए नहीं, तुम्हारे लिए निबाह करूँगी, लेकिन मैं कैसे सँभालूँ अपने को? दिल और दिमाग बेबस हो रहे हैं, नफरत से मेरा खून उबला जा रहा है। कभी-कभी जब तुम्हारी सूरत सामने होती है तो जैसे अपना सुख-दुःख भूल जाती हूँ, लेकिन अब तो जिन्दगी का तूफान जाने कितना तेज होता जा रहा है कि लगता है तुम्हें भी मुझसे खींचकर अलग कर देगा।

लेकिन तुम्हें अपने देवत्व की कसम है, तुम मुझे अब अपने हृदय से दूर न करना। तुम नहीं जानते कि तुम्हारी याद के ही सहारे मैं यह नरक झेलने में समर्थ हूँ। तुम मुझे कहीं छिपा लो—मैं क्या करूँ, मेरा अंग-अंग मुझ पर व्यंग्य कर रहा है, आँखों की नींद खत्म है। पाँवों में इतना तीखा दर्द है कि कुछ कह नहीं सकती। उठते-बैठते चक्कर आने लगा है। कभी-कभी बदन काँपने लगता है। आज वह बरेली गये हैं तो लगता है मैं आदमी हूँ। तभी तुम्हें लिख भी रही हूँ। तुम दुःखी मत होना। चाहती थी कि तुम्हें न लिखूँ लेकिन बिना लिखे मन नहीं मानता। मेरे अपने! तुमने तो यही सोचकर यहाँ भेजा था कि इससे अच्छा लड़का नहीं मिलेगा। लेकिन कौन जानता था कि फूल में कीड़े भी होंगे।

अच्छा, अब माँजी नीचे बुला रही हैं...चलती हूँ...देखो अपने किसी खत में इन सब बातों का जिक्र मत करना! और इसे फाड़कर फेंक देना।

तुम्हारी अभागिन—सुधी।”

चन्दर को खत मिला तो एक बार जैसे उसकी मूर्च्छा टूट गयी। उसने खत लिया और बिनती को बुलाया। बिनती हाथ में साग और डलिया लिये आयी और पास बैठ गयी। चन्दर ने वह खत बिनती को दे दिया। बिनती ने पढ़ा और चन्दर को वापस दे दिया और चुपचाप तरकारी काटने लगी।

वह उठा और चुपचाप अपने कमरे में चला गया। थोड़ी देर बाद बिनती चाय लेकर आयी और चाय रखकर बोली, "आप दीदी को कब खत लिख रहे हैं?"

"मैं नहीं लिखूँगा!" चन्दर बोला।

"क्यों?"

"क्या लिखूँ बिनती, कुछ समझ में नहीं आता!" कुछ झल्लाकर चन्दर ने कहा। बिनती चुपचाप बैठ गयी। थोड़ी देर बाद चन्दर बड़े मुलायम स्वर में बोला, "बिनती, एक दिन तुमने कहा था कि मैं देवता हूँ, तुम्हें मुझ पर गर्व है। आज भी तुम्हें मुझ पर गर्व है?"

"पहले से ज्यादा!" बिनती बोली।

"अच्छा, ताज्जुब है!" चन्दर बोला, "अगर तुम जानती कि आजकल कभी-कभी मैं क्या सोचता हूँ तो तुम्हें ताज्जुब होता! तुम जानती तो, सुधा के इस खत से मुझे ज़रा-सा भी दुःख नहीं हुआ, सिर्फ झल्लाहट ही हुई है। मैं सोच रहा था कि क्यों सुधा इतना स्वाँग भरती है दुःख और अन्तर्द्वन्द्व का! किस लड़की को यह सब पसन्द नहीं? किस लड़की के प्यार में शरीर का अंश नहीं होता? लाख प्रतिभाशालिनी लड़कियाँ हों लेकिन अगर वे किसी को प्यार करेंगी तो उसे अपनी प्रतिभा नहीं देंगी, अपना शरीर ही देंगी और यदि वह अस्वीकार कर लिया जाय तो शायद प्रतिहिंसा से तड़प भी उठेंगी। अब तो मुझे ऐसा लगने लगा कि सेक्स ही प्यार है, प्यार का मुख्य अंश है, बाकी सभी कुछ उसकी तैयारी है, उसके लिए एक समुचित वातावरण और विश्वास का निर्माण करना है... जाने क्यों मुझे इस सबसे बहुत नफरत होती जाती है। अभी तक मैं सेक्स और प्यार को दो चीजें समझता था, प्यार पर विश्वास करता था, सेक्स से नफरत, अब मुझे दोनों ही एक चीजें लगती हैं और जाने कैसे अरुचि-सी हो गयी है इस जिन्दगी से। तुम्हारी क्या राय है, बिनती?"

"मेरी? अरे, हम बे-पढ़े-लिखे आदमी, हम क्या आपसे बात करेंगे! लेकिन एक बात है। ज्यादा पढ़ना-लिखना अच्छा नहीं होता।"

"क्यों?" चन्दर ने पूछा।

"पढ़ने-लिखने से ही आप और दीदी जाने क्या-क्या सोचते हैं! हमने देहात में देखा है कि वहाँ लड़कियाँ समझती हैं कि उन्हें क्या करना है। इसलिए कभी इन सब बातों पर अपना मन नहीं बिगाड़तीं। बल्कि मैंने तो देखा है सभी शादी के बाद मोटी होकर आती हैं। और दीदी अब छोटी-सी नहीं कि ऐसी उनकी तबीयत खराब हो जाय। यह सब मन में घुटने का नतीजा है। जब यह होना ही है तो क्यों दीदी दुःखी होती हैं? उन्हें तो और मोटी होना चाहिए।" बिनती बोली।

इस समस्या का इतना सरल समाधान सुनकर चन्दर को हँसी आ गयी।

“अब तुम ससुराल जा रही हो। मोटी होकर आना!”

“धत्तू, आप तो मजाक करने लगे!”

“लेकिन बिनती, तुम इस मामले में बड़ी विद्वान् मालूम देती हो। अभी तक यह विद्वत्ता कहाँ छिपा रखी थी?”

“नहीं, आप मजाक न बनाइए तो मैं सच बताऊँ कि देहाती लड़कियाँ शहर की लड़कियों से ज्यादा होशियार होती हैं इन सब मामलों में।”

“सच?” चन्दर ने पूछा। वह गाँव की जिन्दगी को बेहद निरीह समझता था।

“हाँ और क्या? वहाँ इतना दुराव, इतना गोपन नहीं है। सब कुछ उनके जीवन का उन्मुक्त है। और ब्याह के पहले ही वहाँ लड़कियाँ सब कुछ...”

“अरे नहीं!” चन्दर ने बेहद ताज्जुब से कहा।

“लो यकीन नहीं होता आपको? मुझे कैसे मालूम हुआ इतना। मैं आपसे कुछ नहीं छिपाती, वहाँ तो सब लोग इसे इतना स्वाभाविक समझते हैं जितना खाना-पीना, हँसना-बोलना। बस लड़कियाँ इस बात में सचेत रहती हैं कि किसी मुसीबत में न फँसें।”

चन्दर चुपचाप बैठ चाय पीता रहा। आज तक वह जिन्दगी को कितना पवित्र मानता रहा था लेकिन जिन्दगी कुछ और ही है। जिन्दगी अभी भी वह है जो सृष्टि के आरम्भ में थी...और दुनिया कितनी चालाक है! कितनी भुलावा देती है! अन्दर से मन में जहर छिपाकर भी होंठों पर कैसी अमृतमयी मुस्कान झलकाती रहती है! यह बिनती जो इतनी शान्त संयत और भोली लगती थी, इसमें सभी गुन भरे हैं। इस दुनिया में? चन्दर ने जिन्दगी को परखने में कितना बड़ा धोखा खाया है।...जिन्दगी यह है—मांसलता और प्यास और उसके साथ-साथ अपने को छिपाने की कला।

वह बैठा-बैठा सोचता रहा। सहसा उसने पूछा—

“बिनती, तुम भी देहात में रही हो और सुधा भी। तुम लोगों की जिन्दगी में वह सब कभी आया?”

बिनती क्षण-भर चुप रही, फिर बोली, “क्यों, क्या नफरत करोगे सुनकर!”

“नहीं बिनती, जितनी नफरत और अरुचि दिल में आ गयी है उससे ज्यादा आ सकती है भला? बताना चाहो तो बता दो। अब मैं जिन्दगी को समझना चाहता हूँ, वास्तविकता के स्तर पर!” चन्दर ने गम्भीरता से पूछा।

“मैंने आपसे कुछ नहीं छिपाया, न अब छिपाऊँगी। पता नहीं क्यों दीदी से भी ज्यादा आप पर विश्वास जमता जा रहा है। सुधा दीदी की जिन्दगी में तो यह सब नहीं

आ पाया। वे बड़ी विचित्र-सी थीं। सबसे अलग रहती थीं और पढ़ती और कमल के पोखरे में फूल तोड़ती थीं, बस! मेरी जिन्दगी में..."

चन्दर ने चाय का प्याला खिसका दिया। जाने किस भाव से उसने बिनती के चेहरे की ओर देखा। वह शान्त थी, निर्विकार थी और बिना किसी हिचक के कहती जा रही थी।

चन्दर चुप था। बिनती ने अपने पाँवों से चन्दर के पाँवों की उँगलियाँ दबाते हुए पूछा, "क्या सोच रहे हैं आप? सुन रहे हैं आप?"

"जाने दो, मैं नहीं सुनूँगा। लेकिन तुम मुझ पर इतना विश्वास क्यों करती हो?" चन्दर ने पूछा।

"जाने क्यों? यहाँ आकर मैंने दीदी के साथ आपका व्यवहार देखा। फिर पम्मी वाली घटना हुई। मेरे तन-मन में एक विचित्र-सी श्रद्धा आपके लिए छा गयी। जाने कैसी अरुचि मेरे मन में दुनिया के लिए थी, आपको देखकर मैं फिर स्वस्थ हो गयी।"

"ताज्जुब है! तुम्हारे मन की अरुचि दूर हो गयी दुनिया के प्रति और मेरे मन की अरुचि बढ़ गयी। कैसे अन्तर्विरोध होते हैं मन की प्रतिक्रियाओं में! एक बात पूछूँ, बिनती! तुम मेरे इतनी समीप रही हो। सैकड़ों बार ऐसा हुआ होगा जो मेरे विषय में तुम्हारे मन में शंका पैदा कर देता, तुम सैकड़ों बार मेरे सिर को अपने वक्ष पर रखकर मुझे सान्त्वना दे चुकी हो। तुम मुझे बहुत प्यारी हो, लेकिन तुम जानती हो मैं तुम्हें प्यार नहीं करता हूँ, फिर यह सब क्या है, क्यों है?"

बिनती चुप रही—"पता नहीं क्यों है? मुझे इसमें कभी कोई पाप नहीं दिखा और कभी दिखा भी तो मन ने कहा कि आप इतने पवित्र हैं, आपका चरित्र इतना ऊँचा है कि मेरा पाप भी आपको छूकर पवित्र हो जाएगा।"

"लेकिन बिनती..."

"बस?" बिनती ने चन्दर को टोककर कहा, "इससे अधिक आप कुछ मत पूछिए, मैं हाथ जोड़ती हूँ?"

चन्दर चुप हो गया।

चन्दर जितना सुलझाने का प्रयास कर रहा था, चीजें उतनी ही उलझती जा रही थीं। सुधा ने जिन्दगी का एक पक्ष चन्दर के सामने रखा था। बिनती उसे दूसरी दुनिया में खींच लायी। कौन सच है, कौन झूठ? वह किसका तिरस्कार करे, किसको स्वीकार करे। अब सुधा गलती पर है तो चन्दर का जिम्मा है, चन्दर ने सुधा की हत्या की है...

लेकिन कितनी भिन्न हैं दोनों बहनें! बिनती कितनी व्यावहारिक, कितनी यथार्थ, संयत और सुधा कितनी आदर्श, कितनी कल्पनामयी, कितनी सूक्ष्म, कितनी ऊँची, कितनी सुकुमार और पवित्र।

जीवन की समस्याओं के अन्तर्विरोधों में जब आदमी दोनों पक्षों को समझ लेता है तब उसके मन में एक ठहराव आ जाता है। वह भावना से ऊपर उठकर स्वच्छ बौद्धिक धरातल पर जिन्दगी को समझने की कोशिश करने लगता है। चन्दर अब भावना से हटकर जिन्दगी को समझने की कोशिश करने लगा था। वह अब भावना से डरता था। भावना के तूफान में इतनी ठोकरें खाकर अब उसने बुद्धि की शरण ली थी और एक पलायनवादी की तरह भावना से भाग कर बुद्धि की एकांगिता में छिप गया था। कभी भावुकता से नफरत करता था, अब वह भावना से ही नफरत करने लगा था। इस नफरत का भोग सुधा और बिनती दोनों को ही भुगतना पड़ा। सुधा को उसने एक भी खत नहीं लिखा और बिनती से एक दिन भी ठीक से बातें नहीं कीं।

जब भावना और सौन्दर्य के उपासक को बुद्धि और वास्तविकता की ठेस लगती है तब वह सहसा कटुता और व्यंग्य से उबल उठता है। इस वक्त चन्दर का मन भी कुछ ऐसा ही हो गया था। जाने कितने जहरीले काँटे उसकी वाणी में उग आये थे, जिन्हें वह कभी भी किसी को चुभाने से बाज नहीं आता था। एक निर्मम निरपेक्षता से वह अपने जीवन की सीमा में आने वाले हर व्यक्ति को कटुता के जहर से अभिषिक्त करता चलता था। सुधा को वह कुछ लिख नहीं सकता था। पम्मी यहाँ थी नहीं, ले-देकर बची अकेली बिनती जिसे इन जहरीले वाणों का शिकार होना पड़ रहा था। सितम्बर बीत रहा था और अब वह गाँव जाने की तैयारी कर रही थी। डॉक्टर साहब ने दिसम्बर तक की छुट्टी ली थी और वे भी गाँव जाने वाले थे। शादी के महीने-भर पहले से उनका जाना जरूरी था।

चन्दर खुश नहीं था, नाराज नहीं था। एक स्वर्गभ्रष्ट देवदूत जिसे पिशाचों ने खरीद लिया हो, उन्हीं की तरह वह जिन्दगी के सुख-दुःख को ठोकर मारता हुआ किनारे खड़ा सभी पर हँस रहा था। खासतौर से नारी पर उसके मन का सारा जहर बिखरने लगा था और उसमें उसे यह भी अक्सर ध्यान नहीं रहता था कि वह किससे क्या बात कर रहा है। बिनती सब कुछ चुपचाप सहती जा रही थी, बिनती को सुधा की तरह रोना नहीं आता था; न उसकी चन्दर इतनी परवा ही करता था जितनी सुधा की। दोनों में बातें भी बहुत कम होती थीं, लेकिन बिनती मन-ही-मन दुःखी थी। वह क्या करे! एक दिन उसने चन्दर के पैर पकड़कर बहुत अनुनय से कहा—“आपको यह क्या होता जा रहा है? अगर आप ऐसे ही करेंगे तो हम दीदी को लिख देंगे!”

चन्दर बड़ी भयावनी हँसी हँसा—“दीदी को क्या लिखोगी? मुझे अब उसकी परवा नहीं। वह दिन गये, बिनती! बहुत बन लिये हम।”

“हाँ, चन्दर बाबू, आप लड़की होते तो समझते!”

“सब समझता हूँ मैं, कैसा दोहरा नाटक खेलती हैं लड़कियाँ! इधर अपराध करना, उधर मुखबिरी करना।”

बिनती चुप हो गयी। एक दिन जब चन्दर कॉलेज से आया तो उसके सिर में दर्द हो रहा था। वह आकर चुपचाप लेट गया। बिनती ने आकर पूछा तो बोला, “क्यों, क्यों मैं बतलाऊँ कि क्या है, तुम मिटा दोगी?”

बिनती ने चन्दर के सिर पर हाथ रखकर कहा, “चन्दर, तुम्हें क्या होता जा रहा है? देखो कैसी हड्डियाँ निकल आयी हैं इधर। इस तरह अपने को मिटाने से क्या फायदा?”

“मिटाने से?” चन्दर उठकर बैठ गया—“मैं मिटाऊँगा अपने को लड़कियों के लिए? छिः, तुम लोग अपने को क्या समझती हो? क्या है तुम लोगों में सिवा एक नशीली मांसलता के? इसके लिए मैं अपने को मिटाऊँगा?”

बिनती ने चन्दर को फिर लिटा दिया।

“इस तरह अपने को धोखा देने से क्या फायदा, चन्दर बाबू? मैं जानती हूँ दीदी के न होने से आपकी जिन्दगी में कितना बड़ा अभाव है। लेकिन...”

“दीदी के न होने पर? क्या मतलब है तुम्हारा?”

“मेरा मतलब आप खूब समझते हैं। मैं जानती हूँ, दीदी होतीं तो आप इस तरह न मिटाते अपने को। मैं जानती हूँ दीदी के लिए आपके मन में क्या था?” बिनती ने सिर में तेल डालते हुए कहा।

“दीदी के लिए क्या था?” चन्दर हँसा, बड़ी विचित्र हँसी—“दीदी के लिए मेरे मन में एक आदर्शवादी भावुकता थी जो अधकचरे मन की उपज थी, एक ऐसी भावना थी जिसके औचित्य पर ही मुझे विश्वास नहीं, वह एक सनक थी।”

“सनक!” बिनती बड़ी देर तक चुपचाप सिर में तेल ठोंकती रही। फिर बोली, “अपनी साँसों से बनायी देवमूर्ति पर इस तरह लात तो न मारिए। आपको शोभा नहीं देता!” बिनती की आँख में आँसू आ गये, “कितनी अभागी हूँ दीदी!”

चन्दर एकटक बिनती की ओर देखता रहा और फिर बोला, “मैं अब पागल हो जाऊँगा, बिनती!”

“मैं आपको पागल नहीं होने दूँगी। मैं आपको छोड़कर नहीं जाऊँगी।”

“मुझे छोड़कर नहीं जाओगी!” चन्दर फिर हँसा—“जाइए आप! अब आप श्रीमती

बिनती होने वाली हैं। आपका ब्याह होगा। मैं पागल हो रहा हूँ, इससे क्या हुआ? इन सब बातों से दुनिया नहीं रुकती, शहनाइयाँ नहीं बन्द होतीं, बन्दनवार नहीं तोड़े जाते।”

“मैं नहीं जाऊँगी चन्दर अभी, तुम मुझे नहीं जानते। तुम्हारी इतनी ताड़ना और व्यंग्य सहकर भी तुम्हारे पास रही, अब दुनिया-भर की लांछना और व्यंग्य सहकर तुम्हारे पास रह सकती हूँ।” बिनती ने तीखे स्वर में कहा।

“क्यों?” तुम्हारे रहने से क्या होगा? तुम सुधा नहीं हो। तुम सुधा नहीं हो सकतीं! जो सुधा है मेरी जिन्दगी में, वह कोई नहीं हो सकता। समझीं? और मुझ पर अहसान मत जताओ! मैं मर जाऊँ, मैं पागल हो जाऊँ, किसी का साझा! क्यों तुम मुझ पर इतना अधिकार समझने लगीं—अपनी सेवा के बल पर? मैं इसकी रत्ती-भर परवा नहीं करता। जाओ, यहाँ से!” और उसने बिनती को धकेल दिया, तेल की शीशी उठाकर बाहर फेंक दी।

बिनती रोती हुई चली गयी। चन्दर उठा और कपड़े पहनकर बाहर चल दिया, “हूँ, ये लड़कियाँ समझती हैं अहसान कर रही हैं मुझ पर!”

बिनती के जाने की तैयारी हो गयी थी और लिया-दिया जाने वाला सारा सामान पैक हो रहा था। डॉक्टर साहब भी महीने-भर की छुट्टी लेकर साथ जा रहे थे। उस दिन की घटना के बाद फिर बिनती चन्दर से बिल्कुल ही नहीं बोली थी। चन्दर भी कभी नहीं बोला।

ये लोग कार पर जाने वाले थे। सारा सामान पीछे-आगे लादा जाने वाला था। डॉक्टर साहब कार लेकर बाजार गये थे। चन्दर उनका होल्डॉल सँभाल रहा था। बिनती आयी और बोली, “मैं आपसे बातें कर सकती हूँ?”

“हाँ, हाँ! तुम उस दिन की बात का बुरा मान गयीं! अमूमन लड़कियाँ सच्ची बात का बुरा मान जाती हैं! बोलो, क्या बात है?” चन्दर ने इस तरह कहा जैसे कुछ हुआ ही न हो।

बिनती की आँख में आँसू थे, “चन्दर, आज मैं जा रही हूँ!”

“हाँ, यह तो मालूम है, उसी का इन्तजाम कर रहा हूँ!”

“पता नहीं मैंने क्या अपराध किया चन्दर कि तुम्हारा स्नेह खो बैठी। ऐसा ही था चन्दर तो आते ही आते इतना स्नेह तुमने दिया ही क्यों था?... मैं तुमसे कभी भी दीदी का स्थान नहीं माँग रही थी...तुमने मुझे गलत क्यों समझा?”

“नहीं, बिनती! मैं अब स्नेह इत्यादि पसन्द नहीं करता हूँ। पूर्ण परिपक्व मनुष्य हूँ और ये सब भावनाएँ अब अच्छा नहीं लगतीं मुझे। स्नेह वगैरह की दुनिया अब मुझे बड़ी उथली लगती है।”

“तभी चन्दर! इतने दिन मैंने रोते-रोते बिताये। तुमने एक बार पूछा भी नहीं। जिन्दगी में सिवा दीदी और तुम्हारे, कौन था? तुमने मेरे आँसुओं की परवा नहीं की। तुम्हें कसूर नहीं देती; कसूर मेरा ही होगा, चन्दर!”

“नहीं, कसूर की बात नहीं बिनती! औरतों के रोने की कहाँ तक परवा की जाए, वे कुत्ते, बिल्ली तक के लिए उतने ही दुःख से रोती हैं।”

“खैर, चन्दर! ईश्वर करे तुम जीवन-भर इतने मजबूर रहो। मैंने अगर कभी तुम्हारे लिए कुछ किया, वैसे किया भी क्या, लेकिन अगर कुछ भी किया तो सिर्फ इसलिए कि मेरे मन की जाने कितनी ममता तुमने जीत ली या मैं हमेशा इस बात के लिए पागल रहती थी कि तुम्हें ज़रा-सी भी ठेस न पहुँचे, मैं क्या कर डालूँ तुम्हारे लिए। तुमने, तुम्हारे व्यक्तित्व ने मुझे जादू में बाँध लिया था। तुम मुझसे कुछ भी करने के लिए कहते तो मैं हिचकें नहीं सकती थी—लेकिन खैर, तुम्हें मेरी ज़रूरत नहीं थी। तुम पर भार हो उठती थी मैं। मैंने अपने को खींच लिया, अब कभी तुम्हारे जीवन में आने का साहस नहीं करूँगी। यह भी कैसे कहूँ कि कभी तुम्हें मेरी ज़रूरत पड़ेगी। मैं जानती हूँ कि तुम्हारे तूफानी व्यक्तित्व के सामने मैं बहुत तुच्छ हूँ, तिनके से भी तुच्छ। लेकिन आज जा रही हूँ, अब कभी यहाँ आने का साहस न करूँगी। लेकिन क्या चलते वक्त आशीर्वाद भी न दोगे? कुछ आगे का रास्ता न बताओगे?”

बिनती ने झुककर चन्दर के पैर पकड़ लिये और सिसक-सिसककर रोने लगी। चन्दर ने बिनती को उठाया और पास की कुर्सी पर बिठा दिया और सिर पर हाथ रखकर बोला, “आशीर्वाद देवताओं से माँगा जाता है। मैं अब प्रेत हो चुका हूँ बिनती!”

चन्दर अब एकान्त चाहता था और वह चन्दर को मिल गया था। पूरा घर खाली, एक महाराजिन, माली और नौकर। और सारे घर में सिर्फ सन्नाटा और उस सन्नाटे का प्रेत चन्दर। चन्दर चाहे जितना टूट जाये, चाहे जितना बिखर जाये, लेकिन चन्दर हारने वाला नहीं था। वह हार भी जाये लेकिन हार स्वीकार करना उसे नहीं आता था। उसके मन में अब सन्नाटा, अपने मन के पूजागृह में स्थापित सुधा की पावन, प्रांजल देवमूर्ति को उसने कठोरता से उठाकर बाहर फेंक दिया था। मन्दिर की मूर्तिमयी पवित्रता, बिनती को अपमानित कर दिया था और मन्दिर के पूजा-उपकरणों को, अपने जीवन के आदर्शों और मानदंडों को उसने चूर-चूर कर डाला था, और बुतशिकन विजेता की तरह क्रूरता से हँसते हुए मन्दिर के भग्नावशेषों पर कदम रखकर चल रहा था। उसका मन टूटा हुआ खँडहर था जिसके उजाड़, बेछत कमरों में चमगादड़ बसेरा करते हैं और जिसके ध्वंसावशेषों पर

गिरगिट पहरा देते हैं। काश कि कोई उन खँडहरों की ईंटें उलटकर देखता तो हर पत्थर के नीचे पूजा-मन्त्र सिसकते हुए मिलते, हर धूल की पर्त में घंटियों की बेहोश ध्वनियाँ मिलतीं, हर कदम पर मुरझाये हुए पूजा के फूल मिलते और हर शाम-सवेरे भग्न देवमूर्ति का करुण रुदन दीवारों पर सिर पटकता हुआ मिलता...लेकिन चन्दर ऐसा-वैसा दुश्मन नहीं था। उसने मन्दिर को चूर-चूर कर उस पर अपने गर्व का पहरा लगा दिया था कि कभी भी कोई उस पर खँडहर के अवशेष कुरेदकर पुराने विश्वास, पुरानी अनुभूतियाँ, पुरानी पूजाएँ फिर से न जगा दे। बुतशिकन तो मन्दिर तोड़ने के बाद सारा शहर जला देता है, ताकि शहर वाले फिर उस मन्दिर को न बना पाएँ-ऐसा था चन्दर। अपने मन को सुनसान कर लेने के बाद उसने अपनी जिन्दगी, अपना रहन-सहन, अपना मकान और अपना वातावरण भी सुनसान कर लिया था। अगहन आ गया था, लेकिन उसके चारों ओर जेठ की दुपहरी से भी भयानक सन्नाटा था।

बिनती जब से गयी उसने कोई खत नहीं भेजा था। सुधा के भी पत्र बन्द हो चुके थे। पम्मी के दो खत आये। पम्मी आजकल दिल्ली घूम रही थी, लेकिन चन्दर ने पम्मी को कोई जवाब नहीं दिया। अकेला...अकेला...बिल्कुल अकेला...सहारा मरुस्थल की नीरस भयावनी शान्ति और वह भी जब तक कि काँपता हुआ लाल सूरज बालू के क्षितिज पर अपनी आखिरी साँसें तोड़ रहा हो और बालू के टीलों की अधमरी छायाएँ लहरदार बालू पर धीरे-धीरे रेंग रही हों।

बिनती के ब्याह को पन्द्रह दिन रह गये थे कि सुधा का एक पत्र आया...

“मेरे देवता, मेरे नयन, मेरे पन्थ, मेरे प्रकाश!

आज कितने दिनों बाद तुम्हें खत लिखने का मौका मिल रहा है। सोचा था, बिनती के ब्याह के महीने-भर पहले गाँव आ जाऊँगी तो एक दिन के लिए तुम्हें आकर देख जाऊँगी। लेकिन इरादे-इरादे हैं और जिन्दगी-जिन्दगी। अब सुधा अपने जेठ और सास के लड़के की गुलाम है। ब्याह के दूसरे दिन ही चला जाना होगा। तुम्हें यहाँ बुला लेती, लेकिन यहाँ बन्धन और परदा तो ससुराल से भी बदतर है।

मैंने बिनती से तुम्हारे बारे में बहुत पूछा। वह कुछ नहीं बतायी। पापा से इतना मालूम हुआ कि तुम्हारी थीसिस छपने गयी है। कन्वोकेशन नजदीक है। तुम्हें याद है, वादा था कि तुम्हारा गाउन पहनकर मैं फोटो खिंचवाऊँगी। वह दिन याद करती हूँ तो जाने कैसा होने लगता है! एक कन्वोकेशन की फोटो खिंचवाकर जरूर भेजना।

क्या तुमने बिनती को कोई दुःख दिया था? बिनती हरदम तुम्हारी बात पर आँसू

भर लाती है। मैंने तुम्हारे भरोसे बिनती को वहाँ छोड़ा था। मैं उससे दूर, माँ का सुख उसे मिला नहीं, पिता मर गये। क्या तुम उसे इतना भी प्यार नहीं दे सकते? मैंने तुम्हें बार-बार सहेज दिया था। मेरी तन्दुरुस्ती अब कुछ-कुछ ठीक है, लेकिन जाने कैसी है। कभी-कभी सिर में दर्द होने लगता है। जी मिचलाने लगता है। आजकल वह बहुत ध्यान रखते हैं। लेकिन वे मुझको समझ नहीं पाये। सारे सुख और आजादी के बीच मैं कितनी असन्तुष्ट हूँ। मैं कितनी परेशान हूँ। लगता है हजारों तूफान हमेशा नसों में घहराया करते हैं।

चन्दर, एक बात कहूँ अगर बुरा न मानो तो। आज शादी के छह महीने बाद भी मैं यही कहूँगी चन्दर कि तुमने अच्छा नहीं किया। मेरी आत्मा सिर्फ तुम्हारे लिए बनी थी, उसके रेशे में वे तत्त्व हैं जो तुम्हारी ही पूजा के लिए थे। तुमने मुझे दूर फेंक दिया, लेकिन इस दूरी के अँधेरे में भी जन्म-जन्मान्तर तक भटकती हुई सिर्फ तुम्हीं को ढूँढ़ूँगी, इतना याद रखना और इस बार अगर तुम मिल गये तो जिन्दगी की कोई ताकत, कोई आदर्श, कोई सिद्धान्त, कोई प्रवचन मुझे तुमसे अलग नहीं कर सकेगी। लेकिन मालूम नहीं पुनर्जन्म सच है या झूठ! अगर झूठ है तो सोचो चन्दर कि इस अनादिकाल के प्रवाह में सिर्फ एक बार...सिर्फ एक बार मैंने अपनी आत्मा का सत्य ढूँढ़ पाया था और अब अनन्तकाल के लिए उसे खो दिया। अगर पुनर्जन्म नहीं है तो बताओ मेरे देवता, क्या होगा? करोड़ों सृष्टियाँ होंगी, प्रलय होंगे और मैं अतृप्त चिनगारी की तरह असीम आकाश में तड़पती हुई अँधेरे की हर परत से टकराती रहूँगी, न जाने कब तक के लिए। ज्यों-ज्यों दूरी बढ़ती जा रही है, त्यों-त्यों पूजा की प्यास बढ़ती जा रही है! काश मैं सितारों के फूल और सूरज की आरती से तुम्हारी पूजा कर पाती! लेकिन जानते हो, मुझे क्या करना पड़ रहा है? मेरे छोटे भतीजे नीलू ने पहाड़ी चूहे पाले हैं। उनके पिंजड़े के अन्दर एक पहिया लगा है और ऊपर घंटियाँ लगी हैं। अगर कोई अभाग्य चूहा उस चक्र में उलझ जाता है तो ज्यों-ज्यों छूटने के लिए वह पैर चलाता है त्यों-त्यों चक्र घूमने लगता है; घंटियाँ बजने लगती हैं। नीलू बहुत खुश होता है लेकिन चूहा थककर बेदम होकर नीचे गिर पड़ता है। कुछ ऐसे ही चक्र में फँस गयी हूँ, चन्दर! सन्तोष सिर्फ इतना है कि घंटियाँ बजती हैं तो शायद तुम उन्हें पूजा के मन्दिर की घंटियाँ समझते होगे। लेकिन खैर! सिर्फ इतनी प्रार्थना है चन्दर! कि अब थककर जल्दी ही गिर जाऊँ। मेरे भाग्य! खत का जवाब जल्दी ही देना। पम्मी अभी आयी या नहीं?

तुम्हारी, जन्म-जन्म की प्यासी-सुधा।"

चन्दर ने खत पढ़ा और फौरन लिखा—

“प्रिय सुधा,

तुम्हारा पत्र बहुत दिनों के बाद मिला। तुम्हारी भाषा वहाँ जाकर बहुत निखर गयी है। मैं तो समझता हूँ कि अगर खत कहीं छुपा दिया जाये तो लोग इसे किसी रोमांटिक उपन्यास का अंश समझें, क्योंकि उपन्यासों के ही पात्र ऐसे खत लिखते हैं, वास्तविक जीवन के नहीं।

खैर, मैं अच्छा हूँ। हरेक आदमी जिन्दगी से समझौता कर लेता है किन्तु मैंने जिन्दगी से समर्पण कराकर उसके हथियार रख लिये हैं। अब किले के बाहर से आनेवाली आवाजें अच्छी नहीं लगतीं, न खतों के पाने की उत्सुकता, न जवाब लिखने का आग्रह। अगर मुझे अकेला छोड़ दो तो बहुत अच्छा होगा। मैं विनती करता हूँ, मुझे खत मत लिखना—आज विनती करता हूँ क्योंकि आज्ञा देने का अब साहस भी नहीं, अधिकार भी नहीं, व्यक्तित्व भी नहीं। खत तुम्हारा तुम्हें भेज रहा हूँ।

कभी जिन्दगी में कोई जरूरत आ पड़े तो जरूर याद करना—बस, इसके अलावा कुछ नहीं।

अपने में सन्तुष्ट—चन्द्रकुमार कपूर।”

उसके बाद फिर वही सुनसान जिन्दगी का ढर्रा। खँडहर के सन्नाटे में भूलकर आयी हुई बाँसुरी की आवाज की तरह सुधा का पत्र, सुधा का ध्यान आया और चला गया। खँडहर का सन्नाटा, सन्नाटे के उल्लू, गिरगिट और पत्थर काँपे और फिर मुस्तैदी से अपनी जगह पर जम गये और उसके बाद फिर वही उदास सन्नाटा, टूटता हुआ—सा अकेलापन और मूर्च्छित दोपहरी के फूल—सा चन्दर...

नवम्बर का एक खुशनुमा विहान; सोने के काँपते तारे सुबह की ठंडी हवाओं में उलझे हुए थे। आकाश एक छोटे बच्चे के नीलम नयनों की तरह भोला और स्वच्छ लग रहा था। क्यारियाँ शरद के फूलों से भर गयी थीं और एक नयी ताजगी मौसम और मन में पुलक उठी थी। चन्दर अपना पुराना कत्थई स्वेटर और पीले रंग के पश्मीने का लम्बा कोट पहने लॉन में टहल रहा था। छोटे-छोटे पिल्ले दूब पर किलोल कर रहे थे। सहसा एक कार आकर रुकी और पम्मी उसमें से कूद पड़ी और क्वाँरी हिरणी की तरह दौड़कर चन्दर के पास पहुँच गयी—“हलो माई ब्वाँय, मैं आ गयी!”

चन्दर कुछ नहीं बोला, “आओ, झाड़गरूम में बैठो!” उसने उसी मुर्दा—सी आवाज में कहा। उसे पम्मी के आने की कोई प्रसन्नता नहीं थी। पम्मी उसके उदास चेहरे को

देखती रही, फिर उसके कन्धे पर हाथ रखकर बोली, "क्यों कपूर, कुछ बीमार हो क्या?"

"नहीं तो, आजकल मुझे मिलना-जुलना अच्छा नहीं लगता। अकेला घर भी है!" उसने उसी फीकी आवाज में कहा।

"क्यों, मिस सुधा कहाँ है? और डॉक्टर शुक्ला!"

"वे लोग मिस बिनती की शादी में गये हैं।"

"अच्छा, उसकी शादी भी हो गयी, डैम इट। जैसे ये लोग पागल हो गये हैं, बर्ती, सुधा, बिनती!...क्यों, मिलते-जुलते क्यों नहीं तुम?"

"यों ही, मन नहीं होता।"

"समझ गयी, जो मुझे तीन-चार साल पहले हुआ था, कुछ निराशा हुई है तुम्हें!"

पम्मी बोली।

"नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं।"

"कहना मत अपनी जबान से, स्वीकार कर लेने से पुरुष का गर्व टूट जाता है।... यही तो तुम्हारे चरित्र में मुझे प्यारा लगता है। खैर, यह ठीक हो जाएगा...! मैं तुम्हें ऐसे नहीं रहने दूँगी।"

"मसूरी में इतने दिन क्या करती रहीं?" चन्दर ने पूछा।

"योग-साधन!" पम्मी ने हँसकर कहा, "जानते हो, आजकल मसूरी में बर्फ पड़ रही है। मैंने कभी बर्फ के पहाड़ नहीं देखे थे। अँग्रेजी उपन्यासों में बर्फ पड़ने का जिक्र सुना बहुत था। सोचा, देखती जाऊँ। क्या कपूर! तुम खत क्यों नहीं लिखते थे?"

"मन नहीं होता था। अच्छा बर्ती की शादी कब होगी?" चन्दर ने बात टालने के लिए कहा।

"हो भी गयी। मैं आ भी नहीं पायी कि सुनते हैं जेनी एक दिन बर्ती को पकड़कर खींच ले गयी और पादरी से बोली, 'अभी शादी करा दो।' उसने शादी करा दी। लौटकर जेनी ने बर्ती का शिकारी सूट फाड़ डाला और अच्छा-सा सूट पहना दिया। बड़े विचित्र हैं दोनों। एक दिन सर्दी के वक्त बर्ती स्वेटर उतारकर जेनी के कमरे में गया तो मारे गुस्से के जेनी ने सिवा पतलून के सारे कपड़े उतारकर बर्ती को कमरे से बाहर निकाल दिया। मैं तो जब से आयी हूँ, रोज नाटक देखती हूँ। हाँ, देखो यह तो मैं भूल ही गयी थी..." और उसने अपनी जेब से पीतल की एक छोटी-सी मूर्ति निकालकर मेज पर रखी—"एक भोटिया औरत इसे बेच रही थी। मैंने इसे माँगा तो वह बोली—'यह सिर्फ मर्दों के लिए है।' मैंने पूछा, 'क्यों?' तो बोली—'इसे अगर मर्द पहन ले तो उस पर किसी औरत का जादू नहीं चलता। वह औरत या तो मर जाती है या भाग जाती है या उसका ब्याह किसी

दूसरे से हो जाता है।' तो मैंने सोचा, तुम्हारे लिए लेती चलूँ।"

चन्दर ने देखा वह अवलोकितेश्वर की महायानी मूर्ति थी। उसने हँसकर उसे ले लिया फिर बोला, "और क्या लायी अपने लिए?"

"अपने लिए एक नया रहस्य लायी हूँ।"

"क्या?"

"इधर देखो, मेरी ओर, मैं सुन्दर लगती हूँ?"

चन्दर ने देखा। पम्मी अठारह साल की लड़की-सी लगने लगी है। चेहरे के कोने भी जैसे गोल हो गये थे और मुँह पर बहुत ही भोलापन आ गया था, आँखों में क्वारापन आ गया था, चेहरे पर सोना और केसर, चम्पा, हरसिंगार घुल-मिल गये थे।

"सचमुच पम्मी, लगता है जैसे कौमार्य लौट आया है तुम पर तो! परियों के कुंज से अपना बचपन फिर चुरा लायी क्या?"

"नहीं कपूर, यही तो रहस्य लायी हूँ, हमेशा सुन्दर बने रहने का और परियों के कुंजों से नहीं, गुनाहों के कुंजों से। मैंने हिमालय की छाँह में एक नया संगीत सुना कपूर, मांसलता का संगीत। मसूरी के समाज में घुल-मिल गयी और मादक अनुभूतियाँ बटोरती रही-बिना किसी पश्चात्ताप के और मैंने देखा कि दिनों-दिन निखरती जा रही हूँ। कपूर, सेक्स इतनी बुरा नहीं जितना मैं समझती थी। तुम्हारी क्या राय है?"

"हाँ, मैं देख रहा हूँ, सेक्स लोगों को उतना बुरा नहीं लगता, जितना मैं समझता था।"

"नहीं चन्दर, सिर्फ इतना ही नहीं, अच्छा मान लो जैसे तुम आजकल उदास हो और तुम्हारा सिर इस तरह अपनी गोद में रख लूँ तो कुछ सन्तोष नहीं होगा तुम्हें?" और पम्मी ने चन्दर का सिर सचमुच अपने श्वासान्दोलित वक्ष से चिपका लिया। चन्दर झल्लाकर अलग हट गया। कैसी अजब लड़की है! थोड़ी देर चुप बैठा रहा, फिर बोला-

"क्यों पम्मी, तुम एक लड़की हो, मैं तुम्हीं से पूछता हूँ-क्या लड़कियों के लिए प्रेम में सेक्स अनिवार्य है?"

"हाँ।" पम्मी ने स्पष्ट स्वरों में जोर देकर कहा।

"लेकिन पम्मी, मैं तुमसे नाम तो नहीं बताऊँगा लेकिन एक लड़की है जिसको मैंने प्यार किया है लेकिन शायद वह मुझसे शादी नहीं कर पाएगी। मेरे उसके कोई शारीरिक सम्बन्ध भी नहीं हैं। क्या तुम इसे प्यार नहीं कहोगी?"

"कुछ दिन बाद जब उसकी शादी हो जाये तब पूछना, तुम्हारा सारा प्रेम मर जाएगा। पहले मैं भी तुमसे कहती थी-पुरुष और नारी के सम्बन्धों में एक अन्तर जरूरी है। अब लगता है यह सब एक भुलावा है।" अपने से पम्मी ने कहा।

“लेकिन दूसरी बात तो सुनो, उसी की एक सखी है। वह जानती है कि मैं उसकी सखी को प्यार करता हूँ, उसे नहीं कर सकता। कहीं सेक्स की तृप्ति का सवाल नहीं फिर भी वह मुझे प्यार करती है। इसे तुम क्या कहोगी?” चन्दर ने पूछा।

“यह और दूसरे ढंग की परिस्थिति है। देखो कपूर, तुमने हिप्नोटिज्म के बारे में नहीं पढ़ा। ऐसा होता है कि अगर कोई हिप्नोटिज्म एक लड़की को हिप्नोटाइज कर रहा है और बगल में एक दूसरी लड़की बैठी है जो चुपचाप यह देख रही है तो वातावरण के प्रभाव से अक्सर ऐसा देखा जाता है कि वह भी हिप्नोटाइज हो जाती है, लेकिन वह एक क्षणिक मानसिक मूर्च्छा होती है जो टूट जाती है।” पम्मी ने कहा।

चन्दर को लगा जैसे बहुत कुछ सुलझ गया। एक क्षण में उसके मन का बहुत-सा भार उतर गया।

“पम्मी, मुझे तुम्हीं एक लड़की मिली जो साफ बातें करती हो और एक शुद्ध तर्क और बुद्धि के धरातल से। बस, मैं आजकल बुद्धि का उपासक हूँ, भगवान से चिढ़ है।”

“बुद्धि और शरीर बस यही दो आदमी के मूल तत्त्व हैं। हृदय तो दोनों के अन्तःसंघर्ष की उलझन का नाम है।” पम्मी ने कहा और सहसा घड़ी देखते हुए बोली, “नौ बज रहे हैं, चलो साढ़े नौ से मैटिनी है। आओ, देख आएँ।”

“मुझे कॉलेज जाना है, मैं जाऊँगा नहीं कहीं!”

“आज इतवार है, प्रोफेसर कपूर?” पम्मी चन्दर को उठाकर बोली, “मैं तुम्हें उदास नहीं होने दूँगी, मेरे मीठे सपने! तुमने भी मुझे इस उदासी के इन्द्रजाल से छुड़ाया था, याद है न?” और चन्दर के माथे पर अपने गरम मुलायम होंठ रख दिये।

माथे पर पम्मी के होंठों की गुलाबी आग चन्दर की नसों को गुदगुदा गयी। वह क्षण-भर के लिए अपने को भूल गया...पम्मी के रेशमी फ्रॉक के गुदगुदाते हुए स्पर्श, उसके वक्ष की अलभ्य गरमाई और उसके स्पर्श के जादू में खो गया। उसके अंग-अंग में सुबह की शबनम ढलकने लगी। पम्मी उसके बालों को अँगुलियों से सुलझाती रही। फिर कपूर के गाल थपथपाकर बोली, “चलो!” कपूर जाकर बैठ गया। “तुम ड्राइव करो।” पम्मी बोली। चन्दर ड्राइव करने लगा और पम्मी कभी उसके कॉलर, कभी उसके बाल, कभी उसके होंठों से खेलती रही।

सात चाँद की रानी ने आखिर अपनी निगाहों के जादू से सन्नाटे के प्रेत को जीत लिया। स्पर्शों के सुकुमार रेशमी तारों ने नगर की आग को शबनम से सींच दिया। ऊबड़-खाबड़ खँडहर को अंगों के गुलाब की पाँखुरियों से ढँक दिया और पीड़ा के आँधियारे को सीपिया पलकों से झरने वाली दूधिया चाँदनी से धो दिया। एक संगीत की लय थी

जिसमें स्वर्गभ्रष्ट देवता खो गया, संगीत की लय थी या उद्दाम यौवन का भरा हुआ ज्वार था जो चन्दर को एक मासूम फूल की तरह बहा ले गया... जहाँ पूजा-दीप बुझ गया था, वहाँ तरुणाई की साँस की इन्द्रधनुषी समाँ झिलमिला उठी थी, जहाँ फूल मुरझाकर धूल में मिल गये थे वहाँ पुखराजी स्पर्शों के सुकुमार हरसिंगार झर पड़े... आकाश के चाँद के लिए जिन्दगी के आँगन में मचलता हुआ कन्हैया, थाली के प्रतिबिम्ब में ही भूल गया...

चन्दर की शामें पम्मी के अदम्य रूप की छाँव में मुस्करा उठीं। ठीक चार बजे पम्मी आती, कार पर चन्दर को ले जाती और चन्दर आठ बजे लौटता। प्यार के बिना कितने महीने कट गये, पम्मी के बिना एक शाम नहीं बीत पाती, लेकिन अब भी चन्दर ने अपने को इतना दूर रखा था कि कभी पम्मी के होंठों के गुलाबों ने चन्दर के होंठों के मूँगे से बातें भी नहीं की थीं।

एक दिन रात को जब वह लौटा तो देखा कि अपनी कार आ गयी है। उसका मन फूल उठा। जैसे कोई अनाथ भटका हुआ बच्चा अपने संरक्षक की गोद के लिए तड़प उठता है, वैसे ही वह पिछले डेढ़ महीने से डॉक्टर साहब के लिए तरस गया था। जहाँ इस वक्त उसके जीवन में सिर्फ नशा और नीरसता थी, वहीं हृदय के एक कोने में सिर्फ एक सुकुमार भावना रह गयी थी, वह थी डॉक्टर शुक्ला के प्रति। वह भावना कृतज्ञता की भावना नहीं थी, डॉक्टर शुक्ला इतने दूर नहीं थे कि अब वह उनके प्रति कृतज्ञ हो, इतने बड़े हो जाने पर भी वह जब कभी डॉक्टर को देखता था तो लगता था जैसे कोई नन्हा बच्चा अपने अभिभावक की गोद में आकर निश्चिन्त हो जाता हो।

उसने पास आकर देखा, डॉक्टर साहब बरामदे में टहल रहे थे। चन्दर दौड़कर उनके पाँव पर गिर पड़ा। डॉक्टर साहब ने उसे उठाकर गले से लगा लिया और बड़े प्यार से उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए बोले—

“कन्वोकेशन हो गया? डिग्री जीत लाये?”

“जी हाँ!” बड़ी विनम्रता से चन्दर ने कहा।

“बहुत ठीक, अब डी. लिट् की तैयारी करो। तुम्हें जल्दी ही सेंट्रल गवर्नमेंट में जाना है।” डॉक्टर साहब बोले, “मैं तो 15 जनवरी को दिल्ली जा रहा हूँ। कम-से-कम साल भर के लिए?”

“इतनी जल्दी; ऑफर कब आया?” चन्दर ने अचरज से पूछा।

“मैं उन दिनों दिल्ली गया था न, तभी एजुकेशन मिनिस्टर से बात हुई थी!” डॉक्टर

साहब ने चन्दर को देखते हुए कहा, "अरे, तुम कुछ दुबले हो रहे हो! क्यों महाराजिन ने ठीक से काम नहीं किया?"

"नहीं!" चन्दर हँसकर बोला, "बिनती की शादी ठीक-ठाक हो गयी?"

"बिनती की शादी!" डॉक्टर साहब ने सिर झुकाये हुए, टहलते हुए एक बड़ी फीकी हँसी हँसकर कहा, "बिनती और तुम्हारी बुआजी दोनों अन्दर हैं।"

"अन्दर हैं!" चन्दर को यह रहस्य कुछ समझ में नहीं आता था। "इतनी जल्दी बिनती लौट आयी?"

"बिनती गयी ही कहाँ?" डॉक्टर साहब ने बहुत चुपचाप सिर झुका कर कहा और बहुत करुण उदासी उनके मुँह पर छा गयी। वह बेचैनी से बरामदे में टहलने लगे। चन्दर का साहस नहीं हुआ कुछ पूछने का। कुछ अमंगल अवश्य हुआ है।

वह अन्दर गया। बुआजी अपनी कोठरी में सामान रख रही थीं और बिनती बैठी सिल पर उरद की भीगी दाल पीस रही थी! बिनती ने चन्दर को देखा, दाल में सने हुए हाथ जोड़कर प्रणाम किया, सिर को आँचल से ढँककर चुपचाप दाल पीसने लगी, कुछ बोली नहीं। चन्दर ने प्रणाम किया और जाकर बुआ के पैर छू लिये।

"अरे चन्दर है, आओ बेटवा, हम तो लुट गये!" और बुआ वहीं देहरी पर सिर थामकर बैठ गयीं।

"क्या हुआ, बुआजी?"

"होता का भइया! जौन बदा रहा भाग में ओ ही भवा।" और बुआ अपनी धोती से आँसू पोंछकर बोलीं, "ई हमरी छाती पर मूँग दै के लिए बदी रही तौन जमी है। भगवान कौनों को ऐसी कलंकिनी बिटिया न दे। तीन भाँवरी के बाद बारात उठ गयी, भइया! हमारा तो कुल डूब गया।" और बुआजी ने उच्च स्वर में रुदन शुरू किया। बिनती ने चुपचाप हाथ धोये और उठकर छत पर चली गयी।

"चप रहो हो। अब रोय-रोय के काहे जिउ हल्कान करत हउ? गुनवन्ती बिटिया बाय, हज्जारन आय के बिटिया के लिए गोड़े गिरिहैं। अपना एकान्त होई के बैठो!" महाराजिन ने पूड़ी उतारते हुए कहा।

"आखिर बात क्या हुई, महाराजिन?" चन्दर ने पूछा।

महाराजिन ने जो बताया उससे पता लगा कि लड़के वाले बहुत ही संकीर्णमना और स्वार्थी थे। पहले मालूम हुआ कि लड़का उन्होंने ग्रेजुएट बताया था। वह था इंटर फेल। फिर दरवाजे पर झगड़ा किया उन्होंने। डॉक्टर साहब बहुत बिगड़ गये, अन्त में मड़वे में लोगों ने देखा कि लड़के के बायें हाथ की अँगुलियाँ गायब हैं। डॉक्टर साहब इस बात पर

बिगड़े और उन्होंने मड़वे से बिनती को उठवा दिया। फिर बहुत लड़ाई हुई। लाठी तक चलने की नौबत आ गयी। जैसे-तैसे झगड़ा निपटा। तीन भाँवरों के बाद ब्याह टूट गया।

“अब बताओ, भइया!” सहसा बुआ आँसू पोंछकर गरज उठीं—“ई इन्हें का हुई गवा रहा, इनकी मति मारी गयी। गुस्से में आय के बिनती को उठवाय लिहिन। अब हम एत्ती बड़ी बिटिया लै के कहाँ जाई? अब हमरी बिरादरी में कौन पूछी एका? एत्ता पढ़-लिख के इन्हें का सूझा? अरे लड़की वाले हमेशा दब के चलै चाहें।”

“अरे तो क्या आँख बन्द कर लेते? लँगड़े-लूले लड़के से कैसे ब्याह कर देते, बुआ! तुम भी गजब करती हो!” चन्दर बोला।

“भइया, जेके भाग में लँगड़ा-लूला बदा होई ओका ओही मिली। लड़कियन को निबाह करै चाही कि सकल देखै चाही। अबहित ब्याह के बाद कौनों के हाथ-गोड़ टूट जाये तो औरत अपने आदमी को छोड़ के गली-गली की हाँड़ी चाटै? हम रहे तो जब बिनती तीन बरस की हुई गयी, तब उनकी सकल उजेले में देखा रहा। जैसा भाग में रहा तैसा होता!”

चन्दर ने विचित्र हृदय-हीन तर्क को सुना और आश्चर्य से बुआ की ओर देखने लगा।... बुआजी बकती जा रही थीं—

“अब कहते हैं कि बिनती को पढ़उबै! ब्याह न करबै! रही-सही इज्जत भी बेच रहे हैं। हमार तो किस्मत फूट गयी...” और वे फिर रोने लगीं, “पैदा होते काहे नहीं मर गयी कुलबोरनी...कुलच्छनी...अभागिन!”

सहसा बिनती छत से उतरी और आँगन में आकर खड़ी हो गयी, उसकी आँखों में आग भरी थी—“बस करो, माँजी!” वह चीखकर बोली, “बहुत सुन लिया मैंने। अब और बर्दाश्त नहीं होता। तुम्हारे कोसने से अब तक नहीं मरी, न मरूँगी। अब मैं सुनूँगी नहीं, मैं साफ कह देती हूँ। तुम्हें मेरी शक्ल अच्छी नहीं लगती तो जाओ तीरथ-यात्रा में अपना परलोक सुधारो! भगवान का भजन करो। समझी कि नहीं!”

चन्दर ने ताज्जुब से बिनती की ओर देखा। वह वही बिनती है जो माँजी की ज़रा-ज़रा-सी बात से लिपटकर रोया करती थी। बिनती का चेहरा तमतमाया हुआ था और गुस्से से बदन काँप रहा था। बुआ उछलकर खड़ी हो गयीं और दुगुनी चीखकर बोलीं, “अब बहुत जबान चलै लगी है। कौन है तोर जे के बल पर ई चमक दिखावत है? हम काट के धर देबै, तोके बताय देइत हई। मुँहझौंसी! ऐसी न होती तो काहे ई दिन देखै पड़त। उन्हें तो खाय गयी, हमहूँ का खाय लेव!” अपना मुँह पीटकर बुआ बोलीं।

“तुम इतनी मीठी नहीं हो माँजी कि तुम्हें खा लूँ!” बिनती ने और तड़पकर जवाब दिया।

चन्दर स्तब्ध हो गया। यह बिनती पागल हो गयी है। अपनी माँ को क्या कह रही है!

“छिः, बिनती। पागल हो गयी हो क्या? चलो उधर!” चन्दर ने डाँटकर कहा।

“चुप रहो, चन्दर! हम भी आदमी हैं। हमने जितना बर्दाश्त किया है, हमीं जानते हैं। हम क्यों बर्दाश्त करें! और तुमसे क्या मतलब? तुम कौन होते हो हमारे बीच में बोलने वाले?”

“क्या है यह सब? तुम लोग सब पागल हो गये हो क्या? बिनती, यह क्या हो रहा है?” सहसा डॉक्टर साहब ने आकर कहा।

बिनती दौड़कर डॉक्टर साहब से लिफ्ट गयी और रोकर बोली, “मामाजी, मुझे दीदी के पास भेज दीजिए! मैं यहाँ नहीं रहूँगी।”

“अच्छा बेटी! अच्छा! जाओ चन्दर!” डॉक्टर साहब ने कहा। बिनती चली गयी तो बुआ जी से बोले, “तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। उस पर गुस्सा उतारने से क्या फायदा? हमारे सामने ये सब बातें करोगी तो ठीक नहीं होगा।”

“अरे हम काहे बोलबै! हम तो मर जाई तो अच्छा है...” बुआजी पर जैसे देवी माँ आ गयी हों इस तरह से झूम-झूमकर रो रही थीं... “हम तो वृन्दावन जाय के डूब मरीं! अब हम तुम लोगन की सकल न देखबै। हम मर जाई तो चाहे बिनती को पढ़ायो चाहे नचायो-गवायो। हम अपनी आँख से न देखबै।”

उस रात को किसी ने खाना नहीं खाया। एक विचित्र-सा विषाद सारे घर पर छाया हुआ था। जाड़े की रात का गहन अँधेरा खमोश छाया हुआ था, महज एक अमंगल छाया की तरह कभी-कभी बुआजी का रुदन अँधेरे को झकझोर जाता था।

सभी चुपचाप भूखे सो गये...

दूसरे दिन बिनती उठी और महाराजिन के आने के पहले ही उसने चूल्हा जलाकर चाय चढ़ा दी। थोड़ी देर में चाय बनाकर और टोस्ट भूनकर वह डॉक्टर साहब के सामने रख आयी। डॉक्टर साहब कल की बातों से बहुत ही व्यथित थे। रात को भी उन्होंने खाना नहीं खाया था, इस वक्त भी उन्होंने मना कर दिया। बिनती चन्दर के कमरे में गयी, “चन्दर, मामाजी ने कल रात को भी कुछ नहीं खाया, तुमने भी नहीं खाया, चलो चाय भी लो!”

चन्दर ने भी मना किया तो बिनती बोली, “तुम पी लोगे तो मामाजी भी शायद पी लें।” चन्दर चुपचाप गया। बिनती थोड़ी देर में गयी तो देखा दोनों चाय पी रहे हैं। वह आकर मेवा निकालने लगी।

चाय पीते-पीते डॉक्टर साहब ने कहा, “चन्दर, यह पास-बुक लो। पाँच सौ निकाल लो और दो हजार का हिसाब अलग करवा दो। ...अच्छा देखो, मैं तो चला जाऊँगा दिल्ली, बिनती को शाहजहाँपुर भेजना ठीक नहीं है। वहाँ चार रिश्तेदार हैं, बीस तरह की बातें होंगी। लेकिन मैं चाहता हूँ अब आगे जब तक वह चाहे, पढ़े! अगर कहो तो यहाँ छोड़ जाऊँ, तुम पढ़ाते रहना!”

बिनती आ गयी और तश्तरी में भुना मेवा रखकर उसमें नमक मिला रही थी। चन्दर ने एक स्लाइस उठायी और उस पर नमक लगाते हुए बोला, “वैसे आप यहाँ छोड़ जाएँ तो कोई बात नहीं है, लेकिन अकेले घर में अच्छा नहीं लगता। दो-एक रोज की बात दूसरी होती है। एकदम से साल-भर के लिए...आप समझ लें।”

“हाँ बेटा, कहते तो तुम ठीक हो! अच्छा, कॉलेज के होस्टल में अगर रख दिया जाए!” डॉक्टर साहब ने पूछा।

“मैं लड़कियों को होस्टल में रखना ठीक नहीं समझता हूँ।” चन्दर बोला, “घर के वातावरण और वहाँ के वातावरण में बहुत अन्तर होता है।”

“हाँ, यह भी ठीक है। अच्छा तो इस साल मैं इसे दिल्ली लिये जा रहा हूँ। अगले साल देखा जायेगा...चन्दर, इस महीने-भर में मेरा सारा विश्वास हिल गया। सुधा का विवाह कितनी अच्छी जगह किया गया, मगर सुधा पीली पड़ गयी है। कितना दुःख हुआ देखकर! और बिनती के साथ यह हुआ! सचमुच यह जाति, विवाह सभी परम्पराएँ बहुत ही बुरी हैं। बुरी तरह सड़ गयी हैं। उन्हें तो काट फेंकना चाहिए। मेरा तो वैसे इस अनुभव के बाद सारा आदर्श ही बदल गया।”

चन्दर बहुत अचरज से डॉक्टर साहब की ओर देखने लगा। यही जगह थी, इसी तरह बैठकर डॉक्टर साहब ने जाति बिरादरी, विवाह आदि सामाजिक परम्पराओं की कितनी प्रशंसा की थी! जिन्दगी की लहरों ने हर एक को दस महीने में कहाँ से कहाँ लाकर पटक दिया है। डॉक्टर साहब कहते गये...“हमलोग जिन्दगी से दूर रहकर सोचते हैं कि हमारी सामाजिक संस्थाएँ स्वर्ग हैं, यह तो जब उनमें धँसो तब उनकी गन्दगी मालूम होती है। चन्दर, तुम कोई गैर जात का अच्छा-सा लड़का ढूँढो। मैं बिनती की शादी दूसरी बिरादरी में कर दूँगा।”

बिनती, जो और चाय ला रही थी, फौरन बड़े दृढ़ स्वर में बोली, “मामाजी, आप जहर दे दीजिए लेकिन मैं शादी नहीं करूँगी। क्या आपको मेरी दृढ़ता पर विश्वास नहीं?”

“क्यों नहीं, बेटा! अच्छा, जब तक तेरी इच्छा हो, पढ़!”

दूसरे दिन डॉक्टर साहब ने बुआजी को बुलाया और रुपये दे दिये।

“लो, यह पाँच सौ पहले खर्चे के हैं और दो हजार में से तुम्हें धीरे-धीरे मिलता

रहेगा।”

दो-तीन दिन के अन्दर बुआ ने जाने की सारी तैयारी कर ली, लेकिन तीन दिन तक बराबर रोती रहीं। उनके आँसू थमे नहीं। बिनती चुप थी। वह भी कुछ नहीं बोली, चौथे दिन जब वह सामान मोटर पर रखवा चुकीं तो उन्होंने चन्दर से बिनती को बुलवाया। बिनती आयी तो उन्होंने उसे गले से लगा लिया—और बेहद रोयीं। लेकिन डॉक्टर साहब को देखते ही फिर बोल उठीं—“हमरी लड़की का दिमाग तुम ही बिगाड़े हो। दुनिया में भाइयों अपना नै होत। अपनी लड़की को बिया दियौ! हमरी लड़की...” फिर बिनती को चिपटाकर रोने लगीं।

चन्दर चुपचाप खड़ा सोच रहा था, अभी तक बिनती खराब थी। अब डॉक्टर साहब खराब हो गये। बुआ ने रुपये सँभालकर रख लिये और मोटर पर बैठ गयीं। समस्त लांछनों के बावजूद डॉक्टर साहब उन्हें पहुँचाने स्टेशन तक गये।

बिनती बहुत ही चुप-सी हो गयी थी। वह किसी से कुछ नहीं बोलती और चुपचाप काम किया करती थी। जब काम से फुरसत पा लेती तो सुधा के कमरे में जाकर लेट जाती और जाने क्या सोचा करती। चन्दर को बड़ा ताज्जुब होता था बिनती को देखकर। जब बिनती खुश थी, बोलती-चालती थी तो चन्दर बिनती से चिढ़ गया था, लेकिन बिनती के जीवन का यह नया रूप देखकर पहले की सभी बातें भूल गया। और उससे फिर बात करने की कोशिश करने लगा। लेकिन बिनती ज्यादा बोलती ही नहीं।

एक दिन दोपहर को चन्दर यूनिवर्सिटी से लौटकर आया और उसने रेडियो खोल दिया। बिनती एक तश्तरी में अमरूद काटकर ले आयी और रखकर जाने लगी। “सुनो बिनती, क्या तुमने मुझे माफ नहीं किया? मैं कितना व्यथित हूँ, बिनती! अगर तुमको भूल से कुछ कह दिया तो तुम उसका इतना बुरा मान गयीं कि दो-तीन महीने बाद भी नहीं भूलीं!”

“नहीं, बुरा मानने की क्या बात है, चन्दर!” बिनती एक फीकी हँसी-हँसकर बोली, “आखिर नारी का भी एक स्वाभिमान है, मुझे माँ बचपन से कुचलती रही, मैंने तुम्हें दीदी से बढ़कर माना। तुम भी ठोकरें लगाने से बाज नहीं आये, फिर भी मैं सब सहती गयी। उस दिन जब मंडप के नीचे मामाजी ने जबरदस्ती हाथ पकड़कर खड़ा कर दिया तो मुझे उसी क्षण लगा कि मुझमें भी कुछ सत्व है, मैं इसीलिए नहीं बनी हूँ कि दुनिया मुझे कुचलती ही रहे। अब मैं विरोध करना, विद्रोह करना भी सीख गयी हूँ। जिन्दगी

में स्नेह की जगह है, लेकिन स्वाभिमान भी कोई चीज है। और तुम्हें अपनी जिन्दगी में किसी की जरूरत भी तो नहीं है!" कहकर बिनती धीरे-धीरे चली गयी।

अपमान से चन्दर का चेहरा काला पड़ गया। उसने रेडियो बन्द कर दिया और तश्तरी उठाकर नीचे रख दी और बिना कपड़े बदले पम्मी के यहाँ चल दिया।

मनुष्य का एक स्वभाव होता है। जब वह दूसरे पर दया करता है तो वह चाहता है कि याचक पूरी तरह विनम्र होकर उसे स्वीकार करे। अगर याचक दान लेने में कहीं भी स्वाभिमान दिखलाता है तो आदमी अपनी दानवृत्ति और दयाभाव भूलकर नृशंसता से उसके स्वाभिमान को कुचलने में व्यस्त हो जाता है। आज हफ्तों के बाद चन्दर के मन में बिनती के लिए कुछ स्नेह, कुछ दया जागी थी, बिनती को उदास मौन देखकर; लेकिन बिनती के इस स्वाभिमान-भरे उत्तर ने फिर उसके मन का सोया हुआ साँप जगा दिया था। वह इस स्वाभिमान को तोड़कर रहेगा, उसने सोचा।

पम्मी के यहाँ पहुँचा तो अभी धूप थी। जेनी कहीं गयी थी, बर्ती अपने तोते को कुछ खिला रहा था। कपूर को देखते ही हँसकर अभिवादन किया और बोला, "पम्मी अन्दर है!" वह सीधा अन्दर चला गया। पम्मी अपने शयन-कक्ष में बैठी हुई थी। कमरे में लम्बी-लम्बी खिड़कियाँ थीं जिनमें लकड़ी के चौखटों में रंग-बिरंगे शीशे लगे हुए थे। खिड़कियाँ बन्द थीं और सूरज की किरणें इन शीशों पर पड़ रही थीं और पम्मी पर सातों रंग की छायाएँ खेल रही थीं। वह झुकी हुई सोफे पर अधलेटी कोई किताब पढ़ रही थी। चन्दर ने पीछे से जाकर उसकी आँखें बन्द कर लीं और बगल में बैठ गया।

"कपूर!" अपनी सुकुमार अँगुलियों से चन्दर के हाथ को आँखों पर से हटाते हुए पम्मी बोली और पलकों में बेहद नशा भरकर सोनजुही की मुस्कान बिखेरकर चन्दर को देखने लगी। चन्दर ने देखा, वह ब्राउनिंग की कविता पढ़ रही थी। वह पास बैठ गया।

पम्मी ने उसे अपने वक्ष पर खींच लिया और उसके बालों से खेलने लगी। चन्दर थोड़ी देर चुप लेटा रहा, फिर पम्मी के गुलाबी होंठों पर अँगुलियाँ रखकर बोला, "पम्मी, तुम्हारे वक्ष पर सिर रखकर मैं जाने क्यों सब कुछ भूल जाता हूँ? पम्मी, दुनिया वासना से इतना घबराती क्यों है? मैं ईमानदारी से कहता हूँ कि अगर किसी को वासना हीन प्यार करके, किसी के लिए त्याग करके मुझे जितनी शान्ति मिलती है, पता नहीं क्यों मांसलता में भी उतनी ही शान्ति मिलती है। ऐसा लगता है कि शरीर के विकार अगर आध्यात्मिक प्रेम में जाकर शान्त हो जाते हैं तो लगता है आध्यात्मिक प्रेम में प्यासे रह

जाने वाले अभाव फिर किसी के मांसल-बन्धन में ही आकर बुझ पाते हैं। कितना सुख है तुम्हारी ममता में!"

"शी!" चन्दर के होंठों को अपनी अँगुलियों से दबाती हुई पम्मी बोली, "चरम शान्ति के क्षणों को अनुभव किया करो। बोलते क्यों हो?"

चन्दर चुप हो गया। चुपचाप लेट रहा।

पम्मी की केसर श्वासों उसके माथे को रह-रहकर चूम रही थीं और चन्दर के गालों को पम्मी के वक्ष में धड़कता हुआ संगीत गुदगुदा रहा था। चन्दर का एक हाथ पम्मी के गले में पड़ी इमीटेशन हीरे की माला से खेलने लगा। सारस के पंखों से भी ज्यादा मुलायम सुकुमार गरदन से छूटने पर अँगुलियाँ लाजवन्ती की पत्तियों की तरह सकुचा जाती हैं। माला खोल ली और उसे उतारकर अपने हाथ में ले लिया। पम्मी ने माला लेने के लिए हाथ बढ़ाया ही था कि गले के बटन टच-से टूट गये... बर्फानी चाँदनी उफनकर छलक पड़ी। चन्दर को लगा उसके गालों के नीचे बिजलियों के फूल सिहर उठे हैं और एक मदमाता नशा टूटते हुए सितारों की तरह उसके शरीर को चीरता हुआ निकल गया। वह काँप उठा, सचमुच काँप उठा। नशे में चूर वह उठकर बैठ गया और उसने पम्मी को अपनी गोद में डाल लिया। पम्मी अनंग के धनुष की प्रत्यंचा की तरह दोहरी होकर उसकी गोद में पड़ रही। तरुणाई का चाँद टूटकर दो टुकड़े हो गया था और वासना के तूफान ने झीने बादल भी हटा दिये थे। जहरीली चाँदनी ने नागिन बनकर चन्दर को लपेट लिया। चन्दर ने पागल होकर पम्मी को अपनी बाँहों में कस लिया, इतनी प्यास से लगा कि पम्मी का दीपशिखा-सा तन चन्दर के तन में समा जायेगा। पम्मी निश्चेष्ट आँखें बन्द किये थी लेकिन उसके गालों पर जाने क्या खिल उठा था। चन्दर के गले में उसने मृणाल-सी बाँहें डाल दी थीं। चन्दर ने पम्मी के होंठों को जैसे अपने होंठों में समेट लेना चाहा... इतनी आग... नशा...

"ठाँय!" सहसा बाहर बन्दूक की आवाज हुई। चन्दर चौंक उठा। उसने अपने बाहुपाश ढीले कर दिये। लेकिन पम्मी उसके गले में बाँहें डाले बेहोश पड़ी थी। चन्दर ने क्षण-भर पम्मी के भरपूर रूप यौवन को आँखों से पी लेना चाहा। पम्मी ने अपनी बाँहें हटा लीं और नशे में मखमूर-सी चन्दर की गोद से एक ओर लुढ़क गयी। उसे अपने तन-बदन का होश नहीं था। चन्दर ने उसके वस्त्र ठीक किये और फिर झुककर उसकी नशे में चूर पलकें चूम लीं।

"ठाँय!" बन्दूक की दूसरी आवाज हुई। चन्दर घबराकर उठा।

"यह क्या है, पम्मी?"

“होगा कुछ, जाओ मत।” अलसायी हुई नशीली आवाज में पम्मी ने कहा और उसे फिर खींचकर बिठा लिया। और फिर बाँहों में उसे समेटकर उसका माथा चूम लिया।

“ठाँय!” फिर तीसरी आवाज हुई।

चन्दर उठ खड़ा हुआ और जल्दी से बाहर दौड़ गया। देखा बर्ती की बन्दूक बरामदे में पड़ी है, और वह पिंजड़े के पास मरे हुए तोते का पंख पकड़कर उठाये हुए है। उसके घावों से बर्ती के पतलून पर खून चूर रहा था। चन्दर को देखते ही बर्ती हँस पड़ा, “देखा! तीन गोली में इसे बिल्कुल मार डाला, वह तो कहो सिर्फ एक ही लगी वरना...” और पंख पकड़कर तोते की लाश को झुलाने लगा।

“छिः! फेंको उसे; हत्यारे कहीं के! मार क्यों डाला उसे?” चन्दर ने कहा।

“तुमसे मतलब! तुम कौन होते हो पूछने वाले? मैं प्यार करता था उसे, मैंने मार डाला!” बर्ती बोला और आहिस्ते से उसे एक पत्थर पर रख दिया। रूमाल निकालकर फाड़ डाला। आधा रूमाल उसके नीचे बिछा दिया और आधे से उसका खून पोंछने लगा। फिर चन्दर के पास आया। चन्दर के कन्धे पर हाथ रखकर बोला, “कपूर! तुम मेरे दोस्त हो न! ज़रा रूमाल दे दो।” और चन्दर का रूमाल लेकर तोते के पास खड़ा हो गया। बड़ी हसरत से उसकी ओर देखता रहा। फिर झुककर उसे चूम लिया और उस पर रूमाल ओढ़ा दिया। और बड़े मातम की मुद्रा में उसी के पास सिर झुकाकर बैठ गया।

“बर्ती बर्ती, पागल हो गये क्या?” चन्दर ने उसका कन्धा पकड़ाकर हिलाते हुए कहा, “यह क्या नाटक हो रहा है?”

बर्ती ने आँखें खोलीं और चन्दर को भी हाथ पकड़कर वहीं बिठा लिया और बोला, “देखो कपूर, एक दिन तुम आये थे तो मैंने तोता और जेनी दोनों को दिखाकर कहा था कि जेनी से मैं नफरत करता हूँ, उससे शादी कर लूँगा और तोते से मैं प्यार करता हूँ, इसे मार डालूँगा। कहा था कि नहीं? कहो हाँ।”

“हाँ, कहा था।” चन्दर बोला, “लेकिन क्यों कहा था?”

“हाँ, अब पूछा तुमने! तुम पूछोगे ‘मैंने क्यों मार डाला’ तो मैं कहूँगा कि इसे अब मर जाना चाहिए था, इसलिए इसे मार डाला। तुम पूछोगे, ‘इसे क्यों मर जाना चाहिए?’ तो मैं कहूँगा, ‘जब कोई जीवन की पूर्णता पर पहुँच जाता है तो उसे मर जाना चाहिए। अगर वह अपनी जिन्दगी का लक्ष्य पूरा कर चुका है और नहीं मरता तो यह उसका अन्याय है। वह अपनी जिन्दगी का लक्ष्य पूरा कर चुका था, फिर भी नहीं मरता था। मैं इसे प्यार करता था लेकिन यह अन्याय नहीं सह सकता था, अतः मैंने इसे मार डाला!’”

“अच्छा, तो तुम्हारे तोते की भी जिन्दगी का कोई लक्ष्य था?”

“हरेक की जिन्दगी का लक्ष्य होता है। और वह लक्ष्य होता है सत्य को, चरम सत्य को जान जाना। वह सत्य जान लेने के बाद आदमी अगर जिन्दा रहता है, तो उसकी यह असीम बेहयाई है। मैंने इसे वह सत्य सिखा दिया। फिर भी यह नहीं मरा तो मैंने मार डाला। फिर तुम पूछोगे कि वह चरम सत्य क्या है? वह सत्य है कि मौत आदमी के शरीर की हत्या करती है। और आदमी की हत्या गला घोट देती है। मसलन तुम अगर किसी औरत के पास जा रहे हो या किसी औरत के पास से आ रहे हो। और सम्भव है उसने तुम्हारी आत्मा की हत्या कर डाली हो...”

“ऊँह! अब तुम जल्दी ही पूरे पागल हो जाओगे?” चन्दर ने कहा और फिर वह पम्मी के पास लौट गया। पम्मी उसी तरह मदहोश लेटी थी। उसने जाते ही फिर बाँहें फैलाकर चन्दर को समेट लिया और चन्दर उसके वक्ष की रेशमी गरमाई में डूब गया।

जब वह लौटा तो बर्ती हाथ में खुरपा लिये एक गड़ढा बन्द कर रहा था। “सुनो, कपूर! यहाँ मैंने उसे गाड़ दिया। यह उसकी समाधि है। और देखो, आते-आते यहाँ सिर झुका देना। वह बेचारा जीवन का सत्य जान चुका है। समझ लो वह सेंट पैरट (सन्त शुकदेव) हो गया है!”

“अच्छा, अच्छा!” चन्दर सिर झुकाकर हँसते हुए आगे बढ़ा।

“सुनो, रुको कपूर!” फिर बर्ती ने पुकारा और पास आकर चन्दर के कन्धे पर हाथ रखकर बोला, “कपूर, तुम मानते हो कि नहीं कि पहले मैं एक असाधारण आदमी था।”

“अब भी हो।” चन्दर हँसते हुए बोला।

“नहीं, अब मैं असाधारण नहीं हूँ, कपूर! देखो, तुम्हें आज रहस्य बताऊँ। वही आदमी असाधारण होता है जो किसी परिस्थिति में किसी भी तथ्य को स्वीकार नहीं करता, उनका निषेध करता चलता है। जब वह किसी को भी स्वीकार कर लेता है, तब वह पराजित हो जाता है। मैं तो कहूँगा असाधारण आदमी बनने के लिए सत्य को भी स्वीकार नहीं करना चाहिए।”

“क्या मतलब, बर्ती! तुम तो दर्शन की भाषा में बोल रहे हो। मैं अर्थशास्त्र का विद्यार्थी हूँ, भाई!” चन्दर ने कौतूहल से कहा।

“देखो, अब मैंने विवाह स्वीकार कर लिया। जेनी को स्वीकार कर लिया। चाहे यह जीवन का सत्य ही क्यों न हो पर महत्ता तो निषेध में होती है। सबसे बड़ा आदमी वह होता है तो अपना निषेध कर दे...लेकिन मैं अब साधारण आदमी हूँ। सस्ते किस्म का अदना व्यक्ति। मुझे कितना दुःख है आज। मेरा तोता भी मर गया और मेरी असाधारणता भी।” और बर्ती फिर तोते की कब्र के पास सिर झुकाकर बैठ गया।

वह घर पहुँचा तो उसके पाँव जमीन पर नहीं पड़ रहे थे। उसने उफनी हुई चाँदनी चूमी थी, उसने तरुणाई के चाँद को स्पर्शों से सिहरा दिया था, उसने नीली बिजलियाँ चूमी थीं। प्राणों की सिहरन और गुदगुदी से खेलकर वह आ रहा था, वह पम्पी के होंठों के गुलाबों को चूम-चूमकर गुलाबों के देश में पहुँच गया था और उसकी नसों में बहते हुए रस में गुलाब झूम उठे थे। वह सिर से पैर तक एक मदहोश प्यास बना हुआ था। घर पहुँचा तो जैसे उल्लास से उसका अंग-अंग नाच रहा हो। बिनती के प्रति दोपहर को जो आक्रोश उसके मन में उभर आया था, वह भी शान्त हो गया था।

बिनती ने आकर खाना रखा। चन्दर ने बहुत हँसते हुए, बड़े मीठे स्वर में कहा, “बिनती, आज तुम भी खाओ।”

“नहीं, मैं नीचे खाऊँगी।”

“अरे चल बैठ, गिलहरी!” चन्दर ने बहुत दिन पहले के स्नेह के स्वर में कहा और बिनती के पीठ में एक घूँसा मारकर उसे पास बिठा लिया—“आज तुम्हें नाराज नहीं रहने देंगे। ले खा, पगली!”

नफरत से नफरत बढ़ती है, प्यार से प्यार जागता है। बिनती के मन का सारा स्नेह सूख-सा गया था। वह चिड़चिड़ी, स्वाभिमानी, गम्भीर और रूखी हो गयी थी लेकिन औरत बहुत कमजोर होती है। ईश्वर न करे, कोई उसके हृदय की ममता को छू ले। वह सब कुछ बर्दाश्त कर लेती है लेकिन अगर कोई किसी तरह उसके मन के रस को जगा दे, तो फिर अपना सब अभिमान भूल जाती है। चन्दर ने, जब वह यहाँ आयी थी, तभी से उसके हृदय की ममता जीत ली थी। इसलिए चन्दर के सामने सदा झुकती आयी लेकिन पिछली बार से चन्दर ने ठोकर मारकर सारा स्नेह बिखेर दिया था। उसके बाद उसके व्यक्तित्व का रस सूखता ही गया। क्रोध जैसे उसकी भौंहों पर रखा रहता था।

आज चन्दर ने उसको इतने दुलार से बुलाया तो लगा वह जाने कितने दिनों का भूला स्वर सुन रही है। चाहे चन्दर के प्रति उसके मन में कुछ भी आक्रोश क्यों न हो, लेकिन वह इस स्वर का आग्रह नहीं टाल सकती, यह वह भली प्रकार जानती थी। वह बैठ गयी। चन्दर ने एक कौर बनाकर बिनती के मुँह में दे दिया। बिनती ने खा लिया। चन्दर ने बिनती की बाँह में चुटकी काट कर कहा—

“अब दिमाग ठीक हो गया पगली का! इतने दिनों से अकड़ी फिरती थी!”

“हूँ!” बिनती ने बहुत दिन के भूले हुए स्नेह के स्वर में कहा, “खुद ही तो अपना दिमाग बिगाड़े रहते हैं और हमें इल्जाम लगाते हैं। तरकारी ठंडी तो नहीं है?”

दोनों में सुलह हो गयी...जाड़ा अब काफी बढ़ गया था। खाना खा चुकने के बाद

बिनती शाल ओढ़े चन्दर के पास आयी और बोली, “लो, इलायची खाओगे?” चन्दर ने ले ली। छीलकर आधे दाने खुद खा लिये, आधे बिनती के मुँह में दे दिये। बिनती ने धीरे से चन्दर की अँगुली दाँत से दबा दी। चन्दर ने हाथ खींच लिया। बिनती उसी के पलंग पर पास ही बैठ गयी और बोली, “याद है तुम्हें? इसी पलंग पर तुम्हारा सिर दबा रही थी तो तुमने शीशी फेंक दी थी।”

“हाँ, याद है! अब कहो तुम्हें उठाकर फेंक दूँ।” चन्दर आज बहुत खुश था।

“मुझे क्या फेंकोगे!” बिनती ने शरारत से मुँह बनाकर कहा, “मैं तुमसे उटूँगी ही नहीं।”

जब अंगों का तूफान एक बार उठना सीख लेता है तो दूसरी बार उठते हुए उसे देर नहीं लगती। अभी वह अपने तूफान में पम्मी को पीसकर आया था। सिरहाने बैठी हुई बिनती, हल्का बादामी शाल ओढ़े, रह-रहकर मुस्कराती और गालों पर फूलों के कटोरे खिल जाते, आँख में एक नयी चमक। चन्दर थोड़ी देर देखता रहा उसके बाद उसने बिनती को खींचकर कुछ हिचकते हुए बिनती के माथे पर अपने होंठ रख दिये। बिनती कुछ नहीं बोली। चुपचाप अपने को छुड़ाकर सिर झुकाये बैठी रही और चन्दर के हाथ को अपने हाथ में लेकर उसकी अँगुलियाँ चिटकाती रही। सहसा बोली, “अरे, तुम्हारे कफ का बटन टूट गया है, लाओ सिल दूँ।”

चन्दर को पहले कुछ आश्चर्य हुआ, फिर कुछ ग्लानि। बिनती कितना समर्पण करती है, उसके सामने वह...लेकिन उसने अच्छा नहीं किया। पम्मी की बात दूसरी है, बिनती की बात दूसरी। बिनती के साथ एक पवित्र अन्तर ही ठीक रहता—

बिनती आयी और उसके कफ में बटन सीने लगी...सीते-सीते बचे हुए डोरे को दाँत से तोड़ती हुई बोली, “चन्दर, एक बात कहें मानोगे?”

“क्या?”

“पम्मी के यहाँ मत जाया करो।”

“क्यों?”

“पम्मी अच्छी औरत नहीं है। वह तुम्हें प्यार नहीं करती, तुम्हें बिगाड़ती है।”

“यह बात गलत है, बिनती! तुम इसीलिए कह रही हो न कि उसमें वासना बहुत तीखी है।”

“नहीं, यह नहीं। उसने तुम्हारी जिन्दगी में सिर्फ एक नशा, एक वासना दी, कोई ऊँचाई, कोई पवित्रता नहीं। कहाँ दीदी, कहाँ पम्मी? किस स्वर्ग से उतरकर तुम किस नरक में फँस गये!”

“पहले मैं भी यही सोचता था बिनती, लेकिन बाद में मैंने सोचा कि माना किसी

लड़की के जीवन में वासना ही तीखी है, तो क्या इसी से वह निन्दनीय है? क्या वासना स्वतः में निन्दनीय है? गलत! यह तो स्वभाव और व्यक्तित्व का अन्तर है, बिनती! हरेक से हम कल्पना नहीं माँग सकते, हरेक से वासना नहीं पा सकते। बादल है, उस पर किरण पड़ेगी, इन्द्रधनुष की खिलेगा, फूल है, उस पर किरण पड़ेगी, तबस्सुम ही आयेगा। बादल से हम माँगने लगे तबस्सुम और फूल से माँगने लगे इन्द्रधनुष, तो यह तो हमारी एक कवित्वमयी भूल होगी। माना एक लड़की के जीवन में प्यार आया, उसने अपने देवता के चरणों पर अपनी कल्पना चढ़ा दी। दूसरी के जीवन में प्यार आया, उसने चुम्बन, आलिंगन और गुदगुदी की बिजलियाँ दीं। एक बोली, 'देवता मेरे! मेरा शरीर चाहे जिसका हो, मेरी पूजा-भावना, मेरी आत्मा तुम्हारी है और वह जन्म-जन्मान्तर तक तुम्हारी रहेगी...' और दूसरी दीपशिखा-सी लहराकर बोली, 'दुनिया कुछ कहे अब तो मेरा तन-मन तुम्हारा है। मैं तो बेकाबू हूँ! मैं करूँ क्या? मेरे तो अंग-अंग जैसे अलसा कर चूर हो गये हैं तुम्हारी गोद में गिर पड़ने के लिए, मेरी तरुणार्ध पुलक उठी है तुम्हारे आलिंगन में पिस जाने के लिए। मेरे लाज के बन्धन जैसे शिथिल हुए जाते हैं? मैं करूँ तो क्या करूँ? कैसा नशा पिला दिया है तुमने, मैं सब कुछ भूल गयी हूँ। तुम चाहे जिसे अपनी कल्पना दो, अपनी आत्मा दो, लेकिन एक बार अपने जलते हुए होंठों में मेरे नरम गुलाबी होंठ समेट लो न!' बताओ बिनती, क्यों पहली की भावना ठीक है और दूसरी की प्यास गलत?"

बिनती कुछ देर तक चुप रही, फिर बोली, "चन्दर, तुम बहुत गहराई से सोचते हो। लेकिन मैं तो एक मोटी-सी बात जानती हूँ कि जिसके जीवन में वह प्यास जग जाती है वह फिर किसी भी सीमा तक गिर सकता है। लेकिन जिसने त्याग किया, जिसकी कल्पना जागी, वह किसी भी सीमा तक उठ सकता है। मैंने तो तुम्हें उठते हुए देखा है।"

"गलत है, बिनती! तुमने गिरते हुए देखा है मुझे! तुम मानोगी कि सुधा से मुझे कल्पना ही मिली थी, त्याग ही मिला था, पवित्रता ही मिली थी। पर वह कितने दिन टिकी! और तुम यह कैसे कह सकती हो कि वासना आदमी को नीचे ही गिराती है। तुम आज ही की घटना लो। तुम यह तो मानोगी कि अभी तक मैंने तुम्हें अपमान और तिरस्कार ही दिया था।"

"खैर, उसकी बात जाने दो!" बिनती बोली।

"नहीं, बात आ गयी तो मैं साफ कहता हूँ कि आज मैंने तुम्हारा प्रतिदान देने की सोची, आज तुम्हारे लिए मन में बड़ा स्नेह उमड़ आया। क्यों? जानती हो? पम्मी ने आज अपने बाहुपाश में कसकर जैसे मेरे मन की सारी कटुता, सारा विष खींच लिया।

मुझे लगा बहुत दिन बाद मैं फिर पिशाच नहीं, आदमी हूँ। यह वासना का ही दान है।
तुम कैसे कहोगी कि वासना आदमी को नीचे ही ले जाती है!"

बिनती कुछ नहीं बोली, चन्दर भी थोड़ी देर चुप रहा। फिर बोला, "लेकिन एक बात पूछूँ, बिनती?"

"क्या?"

"बहुत अजब-सी बात है। सोच रहा हूँ पूछूँ या न पूछूँ!"

"पूछो न!"

"अभी मैंने तुम्हारे माथे पर होंठ रख दिये, तुम कुछ भी नहीं बोलीं, और मैं जानता हूँ यह कुछ अनुचित-सा था। तुम पम्मी नहीं हो! फिर भी तुमने कुछ भी विरोध नहीं किया..."

बिनती थोड़ी देर तक चुपचाप अपने पाँव की ओर देखती रही। फिर शाल के छोर से एक डोरा खींचते हुए बोली, "चन्दर, मैं अपने को कुछ समझ नहीं पाती। सिर्फ इतना जानती हूँ कि मेरे मन में तुम जाने क्या हो; इतने महान हो, इतने महान हो कि मैं तुम्हें प्यार नहीं कर पाती, लेकिन तुम्हारे लिए कुछ भी करने से अपने को रोक नहीं सकती। लगता है तुम्हारा व्यक्तित्व, उसकी शक्ति और उसकी दुर्बलताएँ, उसकी प्यास और उसका सन्तोष, इतना महान है, इतना गहरा है कि उसके सामने मेरा व्यक्तित्व कुछ भी नहीं है। मेरी पवित्रता, मेरी अपवित्रता, इन सबसे ज्यादा महान तुम्हारी प्यास है।... लेकिन अगर तुम्हारे मन में मेरे लिए ज़रा भी स्नेह है तो तुम पम्मी से सम्बन्ध तोड़ लो। दीदी से अगर मैं बताऊँगी तो जाने क्या हो जायेगा! और तुम जानते नहीं, दीदी अब कैसी हो गयी हैं? तुम देखो तो आँसू..."

"बस! बस!" चन्दर ने अपने हाथ से बिनती का मुँह बन्द करते हुए कहा, "सुधा की बात मत करो, तुम्हें कसम है। जिन्दगी के जिस पहलू को हम भूल चुके हैं, उसे कुरेदने से क्या फायदा?"

"अच्छा, अच्छा!" चन्दर का हाथ हटाकर बिनती बोली, "लेकिन पम्मी को अपनी जिन्दगी से हटा दो।"

"यह नहीं हो सकता, बिनती?" चन्दर बोला, "और जो कहो, वह मैं कर दूँगा। हाँ, तुम्हारे प्रति आज तक जो दुर्व्यवहार हुआ है, उसके लिए मैं तुमसे क्षमता माँगता हूँ।"

"छिः, चन्दर! मुझे शर्मिन्दा मत करो।" काफी रात हो गयी थी। चन्दर लेट गया। बिनती ने उसे रजाई उड़ा दी और टेबल पर बिजली का स्टैंड रखकर बोली, "अब चुपचाप सो जाओ।"

बिनती चली गयी। चन्दर पड़ा-पड़ा सोचने लगा, दुनिया गलत कहती है कि वासना पाप है। वासना से भी पवित्रता और क्षमाशीलता आती है। पम्मी से उसे जो कुछ मिला, वह अगर पाप है तो आज चन्दर ने जो बिनती को दिया, उसमें इतनी क्षमा, इतनी उदारता और इतनी शान्ति क्यों थी?

उसके बाद बिनती को वह बहुत दुलार और पवित्रता से रखने लगा। कभी-कभी जब वह घूमने जाता तो बिनती को भी ले जाता था। न्यू-ईयर्स-डे के दिन पम्मी ने दोनों की दावत की। बिनती पम्मी के पीछे चाहे चन्दर से पम्मी का विरोध कर ले पर पम्मी के सामने बहुत शिष्टता और स्नेह का बरताव करती थी।

डॉक्टर साहब की दिल्ली जाने की तैयारी हो गयी। बिनती ने कार्यक्रम में कुछ परिवर्तन करा लिया था। अब वह पहले डॉक्टर साहब के साथ शाहजहाँपुर जायेगी और तब दिल्ली।

निश्चय करते-करते अन्त में पहली फरवरी को वे लोग गये। स्टेशन पर बहुत-से विद्यार्थी और डॉक्टर साहब के मित्र उन्हें विदा देने के लिए आये थे। बिनती विद्यार्थियों की भीड़ से घबराकर इधर चली आयी और चन्दर को बुलाकर कहने लगी—“चन्दर! दीदी के लिए एक खत तो दे दो!”

“नहीं।” चन्दर ने बहुत रूखे और दृढ़ स्वर में कहा।

बिनती कुछ क्षण तक एकटक चन्दर की ओर देखती रही; फिर बोली, “चन्दर, मन की श्रद्धा चाहे अब भी वैसी हो, लेकिन तुम पर अब विश्वास नहीं रहा।”

चन्दर ने कुछ जवाब नहीं दिया, सिर्फ हँस पड़ा। फिर बोली, “चन्दर, अगर कभी कोई जरूरत हो तो जरूर लिखना, मैं चली आऊँगी, समझे?” और फिर चुपचाप जाकर बैठ गयी।

जब चन्दर लौटा तो उसके साथ कई साथी प्रोफेसर थे। घर पहुँचकर वह कार लेकर पम्मी के यहाँ चल दिया। पता नहीं क्यों बिनती के जाने का चन्दर को कुछ थोड़ा-सा दुःख था।

गरमी का मौसम आ गया था। चन्दर सुबह कॉलेज जाता, दोपहर को सोता और शाम को वह नियमित रूप से पम्मी को लेकर घूमने जाता। डॉक्टर साहब कार छोड़ गये थे। कार पम्मी और चन्दर को लेकर दूर-दूर का चक्कर लगाया करती थी। इस बार उसने अपनी छुट्टियाँ दिल्ली में ही बिताने की सोची थीं। पम्मी ने भी तय किया था कि मसूरी

से लौटते समय जुलाई में वह एक हफ्ते आकर डॉक्टर शुक्ला की मेहमानी करेगी और दिल्ली के पूर्व परिचितों से भी मिल लेगी।

यह नहीं कहा जा सकता कि चन्दर के दिन अच्छी तरह नहीं बीत रहे थे। उसने अपना अतीत भुला दिया था और वर्तमान को वह पम्मी की नशीली निगाहों में डुबो चुका था। भविष्य की उसे कोई खास चिन्ता नहीं थी। उसे लगता था कि यह पम्मी की निगाहों के बादलों और स्पर्शों के फूलों की जादू भरी दुनिया अमर है, शाश्वत है। इस जादू ने हमेशा के लिए उसकी आत्मा को अभिभूत कर लिया है, ये होठ कभी अलग न होंगे, यह बाहुपाश इसी तरह उसे घेरे रहेगा और पम्मी की गरम तरुण साँसें सदा इसी प्रकार उसके कपोलों को सिहराती रहेंगी। आदमी का विश्वास हमेशा सीमाएँ और अन्त भूल जाने का आदी होता है। चन्दर भी सब कुछ भूल चुका था।

अप्रैल की एक शाम। दिन-भर लू चलकर अब थक गयी थी। लेकिन दिन-भर की लू की वजह से आसमान में इतनी धूल भर गयी थी कि धूप भी हल्की पड़ गयी थी। माली बाहर छिड़काव कर रहा था। चन्दर सोकर उठा था और सुस्ती मिटा रहा था। थोड़ी देर बाद वह उठा, दिशाओं की ओर निरुद्देश्य देखने लगा। बड़ी उदास-सी शाम थी। सड़क भी बिल्कुल सूनी थी, सिर्फ दो-एक साइकिल-सवार लू से बचने के लिए कानों पर तौलिया लपेटे हुए चले जा रहे थे। एक बर्फ का ठेला भी चलाजा रहा था। "जाओ, बर्फ ले आओ?" चन्दर ने माली को पैसे देते हुए कहा। माली ने ठेलावाले को बुलाया। ठेलावाला आकर फाटक पर रुक गया। माली बर्फ तुड़वा ही रहा था कि एक रिक्शा, जिस पर परदा बँधा था, वह भी फाटक के पास मुड़ा और ठेले के पास आकर रुक गया। ठेलावाले ने ठेला पीछे किया। रिक्शा अन्दर आया। रिक्शा में कोई परदानसीन औरत बैठी थी, लेकिन रिक्शा के साथ कोई नहीं था, चन्दर को ताज्जुब हुआ, कौन परदानसीन यहाँ आ सकती है! रिक्शा से एक लड़की उतरी जिसे चन्दर नहीं जानता था, लेकिन बाहर का परदा जितना गन्दा और पुराना था, लड़की की पोशाक उतनी ही साफ और चुस्त। वह सफेद रेशम की सलवार, सफेद रेशम का चुस्त कुरता और उस पर बहुत हल्के शरबती फालसई रंग की चुन्नी ओढ़े हुई थी। वह उतरी और रिक्शावाले से बोली, "अब घंटे भर में आकर मुझे ले जाना।" रिक्शावाला सिर हिलाकर चल दिया और वह सीधे अन्दर चल दी। चन्दर को बड़ा अचरज हुआ। यह कौन हो सकती है जो इतनी बेतकल्लुफी से अन्दर चल दी। उसने सोचा, शायद शरणार्थियों के लिए चन्दा माँगने वाली कोई लड़की हो। मगर अन्दर तो कोई है ही नहीं! उसने चाहा कि रोक दे फिर उसने नहीं रोका। सोचा, खुद ही अन्दर खाली देखकर लौट आयेगी।

माली बर्फ लेकर आया और अन्दर चला गया। वह लड़की लौटी। उसके चेहरे पर कुछ आश्चर्य और कुछ चिन्ता की रेखाएँ थीं। अब चन्दर ने उसे देखा। एक साँवली लड़की थी, कुछ उदास, कुछ बीमार-सी लगती थी। आँखें बड़ी-बड़ी लगती थीं जो रोना भूल चुकी हैं और हँसने में भी अशक्त हैं। चेहरे पर एक पीली छाँह थी। ऐसा लगता था, देखने ही से कि लड़की दुःखी है पर अपने को सँभालना जानती है।

वह आयी और बड़ी फीकी मुस्कान के साथ, बड़ी शिष्टता के स्वर में बोली, “चन्दर भाई, सलाम! सुधा क्या ससुराल में है?”

चन्दर का आश्चर्य और भी बढ़ गया। यह तो चन्दर को जानती भी है!

“जी हाँ, वह ससुराल में है। आप...”

“और बिनती कहाँ है?” लड़की ने बात काटकर पूछा।

“बिनती दिल्ली में है।”

“क्या उसकी भी शादी हो गयी?”

“जी नहीं, डॉक्टर साहब आजकल दिल्ली में हैं। वह उन्हीं के पास पढ़ रही है। बैठ तो जाइए!” चन्दर ने कुर्सी खिसकाकर कहा।

“अच्छा, तो आप यहीं रहते हैं अब? नौकर हो गये होंगे?”

“जी हाँ!” चन्दर ने अचरज में डूबकर कहा, “लेकिन आप इतनी जानकारी और परिचय की बातें कर रही हैं, मैंने आपको पहचाना नहीं, क्षमा कीजिएगा...”

वह लड़की हँसी, जैसे अपनी किस्मत, जिन्दगी, अपने इतिहास पर हँस रही हो।

“आप मुझको कैसे पहचान सकते हैं? मैं जरूर आपको देख चुकी थी। मेरे-आपके बीच में दरअसल एक रोशनदान था, मेरा मतलब सुधा से है!”

“ओह! मैं समझा, आप गेसू हैं!”

“जी हाँ!” और गेसू ने बहुत तमीज से अपनी चुन्नी ओढ़ ली।

“आप तो शादी के बाद जैसे बिल्कुल खो ही गयीं। अपनी सहेली को भी एक खत नहीं लिखा। अख्तर मियाँ मजे में हैं?”

“आपको यह सब कैसे मालूम?” बहुत आकुल होकर गेसू बोली और उसकी पीली आँखों में और भी मैलापन आ गया।

“मुझे सुधा से मालूम हुआ था। मैं तो उम्मीद कर रहा था कि आप हम लोगों को एक दावत जरूर देंगी। लेकिन कुछ मालूम ही नहीं हुआ। एक बार सुधाजी ने मुझे आपके यहाँ भेजा तो मालूम हुआ कि आप लोगों ने मकान ही छोड़ दिया है।”

“जी हाँ, मैं देहरादून में थी। अम्मीजान वगैरह सभी वहीं थीं। अभी हाल में वहाँ कुछ पनाहगीर पहुँचे...”

“पनाहगीर?”

“जी, पंजाब के सिख वगैरह। कुछ झगड़ा हो गया तो हम लोग चले आये। अब हम लोग यहीं हैं।”

“अख्तर मियाँ कहाँ हैं?”

“मिरजापुर में पीतल का रोजगार कर रहे हैं।”

“और उनकी बीवी देहरादून में थी। यह सजा क्यों दी आपने उन्हें?”

“सजा की कोई बात नहीं” गेसू का स्वर घुटता हुआ-सा मालूम दे रहा था।

“उनकी बीवी उनके साथ है।”

“क्या मतलब? आप तो अजब-सी बातें कर रही हैं। अगर मैं भूल नहीं करता तो आपकी शादी...”

“जी हाँ!” बड़ी ही उदास हँसी हँसकर गेसू बोली, “आपसे चन्दर भाई, मैं क्या छिपाऊँगी, जैसे सुधा वैसे आप! मेरी शादी उनसे नहीं हुई!”

“अरे! गुस्ताखी माफ कीजिएगा, सुधा तो मुझसे कह रही थी कि अख्तर...”

“मुझसे मुहब्बत करते हैं!” गेसू बात काटकर बोली और बड़ी गम्भीर हो गयी और अपनी चुन्नी के छोर में टँके हुए सितारे को तोड़ती हुई बोली, “मैं सचमुच नहीं समझ पायी कि उनके मन में क्या था। उनके घरवालों ने मेरे बजाय फूल को ज्यादा पसन्द किया। उन्होंने फूल से ही शादी कर ली। अब अच्छी तरह निभ रही है दोनों की। फूल तो इतने अरसे में एक बार भी हम लोगों से मिलने नहीं आयी!”

“अच्छा...” चन्दर चुप होकर सोचने लगा। कितनी बड़ी प्रवंचना हुई इस लड़की की जिन्दगी में! और कितने दबे शब्दों में यह कहकर चुप हो गयी! एक भी आँसू नहीं, एक भी सिसकी नहीं। संयत स्वर और फीकी मुस्कान, बस। चन्दर चुपचाप उठकर अन्दर गया। महराजिन आ गयी थी। कुछ नाश्ता और शरबत भेजने के लिए कहकर चन्दर बाहर आया। गेसू चुपचाप लॉन की ओर देख रही थी, शून्य निगाहों से। चन्दर आकर बैठ गया और बोला—

“बहुत धोखा दिया आपको!”

“छिः! ऐसी बात नहीं कहते, चन्दर भाई! कौन जानता है कि यह अख्तर की मजबूरी रही हो! जिसको मैंने अपना सरताज माना उसके लिए ऐसा खयाल भी दिल में लाना गुनाह है। मैं इतनी गिरी हुई नहीं कि यह सोचूँ कि उन्होंने धोखा दिया!” गेसू दाँत तले जबान दबाकर बोली।

चन्दर दंग रह गया। क्या गेसू अपने दिल से कह रही है? इतना अखंड विश्वास है गेसू को अख्तर पर! शरबत आ गया था। गेसू ने तकल्लुफ नहीं किया। लेकिन बोली, “आप बड़े भाई हैं। पहले आप शुरू कीजिए।”

“आपकी फिर कभी अख्तर से मुलाकात नहीं हुई?” चन्दर ने एक घूँट पीकर कहा।

“हुई क्यों नहीं? कई बार वह अम्मीजान के पास आये।”

“आपने कुछ नहीं कहा?”

“कहती क्या? यह सब बातें कहने-सुनने की होती हैं! और फिर फूल वहाँ आराम से है, अख्तर भी फूल को जान से ज्यादा प्यार से रखते हैं, यही मेरे लिए बहुत है। और अब कहकर क्या करूँगी! जब फूल से शादी तय हुई और वे राजी हो गये तभी मैंने कुछ नहीं कहा, अब तो फूल की माँग, फूल का सुहाग मेरे लिए सुबह की अजान से ज्यादा पाक है।” गेसू ने शरबत में निगाहें डुबाये हुए कहा। चन्दर क्षण-भर चुप रहा फिर बोला—

“अब आपकी शादी अम्मीजान कब कर रही हैं?”

“कभी नहीं! मैंने कस्ट कर लिया है कि मैं शादी ताउम्र नहीं करूँगी। देहरादून के मैटर्निटी सेंटर में काम सीख रही थी। कोर्स पूरा हो गया। अब किसी अस्पताल में काम करूँगी।”

“आप...”

“क्यों, आपको ताज्जुब क्यों हुआ? मैंने अम्मीजान को इस बात के लिए राजी कर लिया है। मैं अपने पैरों पर खड़ी होना चाहती हूँ।”

चन्दर ने शरबत से बर्फ निकालकर फेंकते हुए कहा—

“मैं आपकी जगह होता तो दूसरी शादी करता और अख्तर से भरसक बदला लेता!”

“बदला!” गेसू मुसकराकर बोली, “छिः, चन्दर भाई! बदला, गुरेज, नफरत इससे आदमी न कभी सुधरा है न सुधरेगा? बदला और नफरत तो अपने मन की कमजोरी को जाहिर करते हैं। और फिर बदला मैं लूँ किससे? उससे, दिल की तनहाइयों में मैं जिसके सजदे पड़ती हूँ। यह कैसे हो सकता है?”

गेसू के माथे पर विश्वास का तेज दमक उठा, उसकी बीमार आँखों में धूप लहलहा उठी और उसका कंचनलता-सा तन जगमगाने लगा। कुछ ऐसी दृढ़ता थी उसकी आवाज में, ऐसी गहराई थी उसकी ध्वनि में कि चन्दर देखता ही रह गया। वह जानता था कि गेसू के दिल में अख्तर के लिए कितना प्रेम था, वह यह भी जानता था कि गेसू अख्तर की शादी के लिए किस तरह पागल थी। वह सारा सपना ताश के महल की तरह गिर

गया। और परिस्थितियों ने नहीं; खुद अख्तर ने धोखा दिया, लेकिन गेसू है कि माथे पर शिकन नहीं, भौंहों में बल नहीं, होंठों पर शिकायत नहीं। नारी के जीवन का यह कैसा अमिट विश्वास था! यानी जिसे गेसू ने अपने प्रेम का स्वर्णमन्दिर समझा था, वह ज्वालामुखी बनकर फूट गया और उसने दर्द की पिघली आग की धारा में गेसू को डुबो देने की कोशिश की लेकिन गेसू है कि अटल चट्टान की तरह खड़ी है।

चन्दर के मन में कहीं कोई टीस उठी। उसके दिल की धड़कनों ने कहीं पर उससे पूछा। '...और चन्दर तुमने क्या किया? तुम पुरुष थे। तुम्हारे सबल कन्धे किसी के प्यार का बोझ क्यों नहीं ढो पाये, चन्दर?' लेकिन चन्दर ने अपनी अन्तःकरण की आवाज को अनसुनी करते हुए पूछा—

“तो आपके मन में ज़रा भी दर्द नहीं अख्तर को न पाने का?”

“दर्द?” गेसू की आवाज डूबने लगी, निगाहों की जर्द पाँखुरियों पर हल्की पानी की लहर दौड़ गयी—“दर्द, यह तो सिर्फ सुधा समझ सकती है, चन्दर भाई! बचपन से वह मेरे लिए क्या थे, यह वही जानती है। मैं तो उनका सपना देखते-देखते उनका सपना ही बन गयी थी, लेकिन खैर दर्द इन्सान के यकीदे को और मजबूत न कर दे, आदमी के कदमों को और ताकत न दे, आदमी के दिल को ऊँचाई न दे तो इन्सान क्या? दर्द का हाल पूछते हैं आप! कयामत के रोज तक मेरी मय्यत उन्हीं का आसरा देखेगी, चन्दर भाई! लेकिन इसके लिए जिन्दगी में तो खामोश ही रहना होगा। बन्द घर में जलते हुए चिराग की तरह घुलना होगा। और अगर मैंने उनको अपना माना है तो वह मिलकर ही रहेंगे। आज न सही कयामत के बाद सही। मुहब्बत की दुनिया में जैसे एक दिन उनके बिना कट जाता है वैसे एक जिन्दगी उनके बिना कट जायेगी... लेकिन उसके बाद वे मेरे होकर रहेंगे।”

चन्दर का दिल काँप उठा। गेसू की आवाज में तारे बरस रहे थे...

“और आपसे क्या कहूँ, चन्दर भाई! क्या आपकी बात मुझसे छिपी है? मैं जानती हूँ। सब कुछ जानती हूँ। सच पूछिए तो जब मैंने देखा कि आप कितनी खामोशी से अपनी दुनिया में आग लगते देख रहे हैं, और फिर भी हँस रहे हैं, तो मैंने आपसे सबक लिया। हमें नहीं मालूम था कि हम और आप दोनों भाई-बहनों की किस्मत एक-सी है।”

चन्दर के मन में जाने कितने घाव कसक उठे। उसके मन में जाने कितना दर्द उमड़ने-सा लगा। गेसू उसे क्या समझ रही है मन में और वह कहाँ पहुँच चुका है! जिसने चन्दर की जिन्दगी से अपने मन का दीप जलाया, वह आज देवता के चरण तक पहुँच गया, लेकिन चन्दर के मन की दीपशिखा? उसने अपने प्यार की चिता जला डाली।

चन्दर के मुँह पर ग्लानि की कालिमा छा गयी। गेसू चुपचाप बैठी थी। सहसा बोली, "चन्दर भाई, आपको याद है, पिछले साल इन्हीं दिनों मैं सुधा से मिलने आयी थी और हसरत आपको मेरा सलाम कहने गया था?"

"याद है!" चन्दर ने बहुत भारी स्वर में कहा।

"इस एक साल में दुनिया कितनी बदल गयी!" गेसू ने एक गहरी साँस लेकर कहा, "एक बार ये दिन चले जाते हैं, फिर बेदर्द कभी नहीं लौटते! कभी-कभी सोचती हूँ कि सुधा होती तो फिर कॉलेज जाते, क्लास में शोर मचाते, भागकर घास में लेटते, बादलों को देखते, शेर कहते और वह चन्दर की और हम अख्तर की बातें करते..." गेसू का गला भर आया और एक आँसू चू पड़ा... "सुधा और सुधा की ब्याह-शादी का हाल बताइए। कैसे हैं उनके शौहर?"

चन्दर के मन में आया कि वह कह दे, गेसू क्यों लज्जित करती हो! मैं वह चन्दर नहीं हूँ। मैंने अपने विश्वास का मन्दिर भ्रष्ट कर दिया... मैं प्रेत हूँ... मैंने सुधा के प्यार का गला घोट दिया है... लेकिन पुरुष का गर्व! पुरुष का छल! उसे यह भी नहीं मालूम होने दिया कि उसका विश्वास चूर-चूर हो चुका है और पिछले कितने ही महीनों से उसने सुधा को खत लिखना भी बन्द कर दिया है और यह भी नहीं मालूम करने का प्रयास किया कि सुधा मरती है या जीती!

घण्टा-भर तक दोनों सुधा के बारे में बातें करते रहे। इतने में रिक्शावाला लौट आया। गेसू ने उसे ठहरने का इशारा किया और बोली, "अच्छा, ज़रा सुधा का पता लिख दीजिए।" चन्दर ने एक कागज पर पता लिख दिया। गेसू ने उठने का उपक्रम किया तो चन्दर बोला, "बैठिए अभी, आपसे बातें करके आज जाने कितने दिनों की बातें याद आ रही हैं!"

गेसू हँसी और बैठ गयी। चन्दर बोला, "आप अभी तक कविताएँ लिखती हैं?"

"कविताएँ..." गेसू फिर हँसी और बोली, "जिन्दगी कितनी हमगीर है, कितनी पुरशोर, और इस शोर में नगमों की हकीकत कितनी! अब हड्डियाँ, नसें, प्रेसर-प्वाइंट, पट्टियाँ और मरहमों में दिन बीत जाता है। अच्छा चन्दर भाई, सुधा अभी उतनी ही शोख है? उतनी ही शरारती है!"

"नहीं।" चन्दर ने बहुत उदास स्वर में कहा, "जाओ, कभी देख आओ न!"

"नहीं, जब तक कहीं जगह नहीं मिल जाती, तब तक तो इतनी आजादी नहीं मिलेगी। अभी यहीं हूँ। उसी को बुलवाऊँगी और उसके पति देवता को लिखूँगी। कितना सूना लग रहा है घर जैसे भूतों का बसेरा हो। जैसे परेत रहते हों!"

“क्यों ‘परेत’ बना रही हैं आप? मैं रहता हूँ इसी घर में।” चन्दर बोला।

“अरे, मेरा मतलब यह नहीं था!” गेसू हँसते हुए बोली, “अच्छा, अब मुझे तो अम्मीजान नहीं भेजेगी, आज जाने कैसे अकेले आने की इजाजत दे दी। आपको किसी दिन बुलवाऊँ तो आइएगा जरूर!”

“हाँ, आऊँगा गेसू, जरूर आऊँगा!” चन्दर ने बहुत स्नेह से कहा।

“अच्छा भाईजान, सलाम!”

“नमस्ते!”

गेसू जाकर रिक्शा पर बैठ गयी और परदा तन गया। रिक्शा चल दिया। चन्दर एक अजीब-सी निगाह से देखता रहा जैसे अपने अतीत की कोई खोयी हुई चीज ढूँढ़ रहा हो, फिर धीरे-धीरे लौट आया। सूरज डूब गया था। वह गुसलखाना बन्द कर नहाने बैठ गया। जाने कहाँ-कहाँ मन भटक रहा था उसका। चन्दर मन का अस्थिर था, मन का बुरा नहीं था। गेसू ने आज उसके सामने अचानक वह तस्वीर रख दी थी जिसमें वह स्वर्ग की ऊँचाइयों पर मँडराया करता था। और जाने कैसा दर्द-सा उसके मन में उठ गया था, गेसू ने अपने अजाने में ही चन्दर के अविश्वास, चन्दर की प्रतिहिंसा को बहुत बड़ी हार दी थी। उसने सिर पर पानी डाला तो उसे लगा यह पानी नहीं है जिन्दगी की धारा है, पिघले हुए अंगारों की धारा जिसमें पड़कर केवल वही जिन्दा बच पाया है, जिसके अंगों में प्यार का अमृत है। और चन्दर के मन में क्या है? महज वासना का विष... वह सड़ा हुआ, गला हुआ शरीर मात्र जो केवल सन्निपात के जोर से चल रहा है। उसने अपने मन के अमृत को गली में फेंक दिया है... उसने क्या किया है?

वह नहाकर आया और शीशे के सामने खड़ा होकर बाल काढ़ने लगा—फिर शीशे की ओर एकटक देखकर बोला, “मुझे क्या देख रहे हो, चन्दर बाबू! मुझे तो तुमने बर्बाद कर डाला। आज कई महीने हो गये और तुमने एक चिट्ठी तक नहीं लिखी, छिः!” और उसने शीशा उलटकर रख दिया।

महराजिन खाना ले आयी। उसने खाना खाया और सुस्त-सा पड़ रहा। “भइया, आज घूमै न जाबो?”

“नहीं!” चन्दर ने कहा और पड़ा-पड़ा सोचने लगा। पम्मी के यहाँ नहीं गया।

यह गेसू दूसरे कमरे में बैठी थी। इस कमरे में बिनती उसे कैलाश का चित्र दिखा रही थी।...चित्र उसके मन में घूमने लगे...चन्दर क्या इस दुनिया में तुम्हीं रह गये थे फोटो दिखाकर पसन्द कराने के लिए...चन्दर का हाथ उठा। तड़ से एक तमाचा...चन्दर, चोट तो नहीं आयी... मान लिया कि मेरे मन ने मुझसे न कहा हो, तुमसे तो मेरा मन कोई बात

नहीं छिपाता...तो चन्दर, तुम शादी कर क्यों नहीं लेते? पापा लड़की देख आयेंगे...हम भी देख लेंगे... तो फिर तुम बैठो तो हम पढ़ेंगे, वरना हमें शरम लगती है... चन्दर, तुम शादी मत करना, तुम इस सबके लिए नहीं बने हो... नहीं सुधा, तुम्हारे वक्ष पर सिर रखकर कितना सन्तोष मिलता है...

आसमान में एक-एक करके तारे टूटते जा रहे थे।

वह पम्मी के यहाँ नहीं गया। एक दिन... दो दिन... तीन दिन... अन्त में चौथे दिन शाम को पम्मी खुद आयी। चन्दर खाना खा चुका था और लॉन पर टहल रहा था। पम्मी आयी। उसने स्वागत किया लेकिन उसकी मुसकराहट में उल्लास नहीं था।

“कहो कपूर, आये क्यों नहीं? मैं समझी, तुम बीमार हो गये!” पम्मी ने लॉन पर पड़ी एक कुर्सी पर बैठते हुए कहा, “आओ, बैठो न!” उसने चन्दर की ओर कुर्सी खिसकायी।

“नहीं, तुम बैठो, मैं टहलता रहूँगा!” चन्दर बोला और कहने लगा, “पता नहीं क्यों पम्मी, दो-तीन दिन से तबीयत बहुत उदास-सी है। तुम्हारे यहाँ आने को तबीयत नहीं हुई!”

“क्यों, क्या हुआ?” पम्मी ने पूछा और चन्दर का हाथ पकड़ लिया। चन्दर पम्मी की कुर्सी के पीछे खड़ा हो गया। पम्मी ने चन्दर के दोनों हाथ पकड़कर अपने गले में डाल लिये और अपना सिर चन्दर से टिकाकर उसकी ओर देखने लगी। चन्दर चुप था। न उसने पम्मी के गाल थपथपाये, न हाथ दबाया, न अलकें बिखेरीं और न निगाहों में नशा ही बिखेरा।

औरत अपने प्रति आने वाले प्यार और आकर्षण को समझने में चाहे एक बार भूल कर जाये, लेकिन वह अपने प्रति आने वाली उदासी और उपेक्षा को पहचानने में कभी भूल नहीं करती। वह होंठों पर होंठों के स्पर्शों के गूढ़तम अर्थ समझ सकती है, वह आपके स्पर्श में आपकी नसों से चलती हुई भावना पहचान सकती है, वह आपके वक्ष से सिर टिकाकर आपके दिल की धड़कनों की भाषा समझ सकती है, यदि उसे थोड़ा-सा भी अनुभव है और आप उसके हाथ पर हाथ रखते हैं तो स्पर्श की अनुभूति से ही जान जायेगी कि आप उससे कोई प्रश्न कर रहे हैं, कोई याचना कर रहे हैं, सान्त्वना दे रहे हैं या सान्त्वना माँग रहे हैं। क्षमा माँग रहे हैं या क्षमा दे रहे हैं, प्यार का प्रारम्भ कर रहे हैं या समाप्त कर रहे हैं। स्वागत कर रहे हैं या विदा दे रहे हैं। यह पुलक का स्पर्श है या उदासी का चाव और नशे का स्पर्श है या खिन्नता और बेमनी का।

पम्मी चन्दर के हाथों को छूते ही जान गयी कि हाथ चाहे गरम हों, लेकिन स्पर्श

बड़ा शीतल है, बड़ा नीरस। उसमें वह पिघली हुई आग की शराब नहीं है जो अभी तक चन्द्र के होंठों पर धधकती थी, चन्द्र के स्पर्शों में बिखरती थी।

“कुछ तबीयत खराब है कपूर, बैठ जाओ!” पम्मी ने उठकर चन्द्र को जबरदस्ती बिठाल दिया, “आजकल बहुत मेहनत पड़ती है, क्यों? चलो, तुम हमारे यहाँ रहो!”

पम्मी में केवल शरीर की प्यास थी, यह कहना पम्मी के प्रति अन्याय होगा। पम्मी में एक बहुत गहरी हमदर्दी थी चन्द्र के लिए। चन्द्र अगर शरीर की प्यास को जीत भी लेता तो उसकी हमदर्दी को वह नहीं ठुकरा पाता था। उस हमदर्दी का तिरस्कार होने से पम्मी दुःखी होती थी और उसे वह तभी स्वीकृत समझती थी जब चन्द्र उसके रूप के आकर्षण में डूबा रहे। अगर पुरुषों के होंठों में तीखी प्यास न हो, बाहुपाशों में जहर न हो तो वासना की इस शिथिलता से नारी फौरन समझ जाती है कि सम्बन्धों में दूरी आती जा रही है। सम्बन्धों की घनिष्टता को नापने का नारी के पास एक ही मापदंड है, चुम्बन का तीखापन!

चन्द्र के मन में ही नहीं वरन् स्पर्शों में भी इतनी बिखरती हुई उदासी थी, इतनी उपेक्षा थी कि पम्मी मर्माहत हो गयी। उसके लिए यह पहली पराजय थी! आजकल पम्मी जान जाती थी कि चन्द्र का रोम-रोम इस वक्त पम्मी की साँसों में डूबा हुआ है।

लेकिन पम्मी ने देखा कि चन्द्र उसकी बाँहों में होते हुए भी दूर, बहुत दूर न जाने किन विचारों में उलझा हुआ है। वह उससे दूर चला जा रहा है, बहुत दूर। पम्मी की धड़कनें अस्त-व्यस्त हो गयीं। उसकी समझ में नहीं आया वह क्या करे! चन्द्र को क्या हो गया? क्या पम्मी का जादू टूट रहा है? पम्मी ने अपनी पराजय से कुंठित होकर अपना हाथ हटा लिया और चुपचाप मुँह फेरकर उधर देखने लगी। चन्द्र चाहे जितना उदास हो लेकिन पम्मी की उदासी वह नहीं सह सकता था। बुरी या भली, पम्मी इस वक्त उसकी सूनी जिन्दगी का अकेला सहारा थी और पम्मी की हमदर्दी का वह बहुत कृतज्ञ था। वह समझ गया, पम्मी क्यों उदास है! उसने पम्मी का हाथ खींच लिया और अपने होठ उसकी हथेलियों पर रख दिये और खींचकर पम्मी का सिर अपने कन्धे पर रख लिया...

पुरुष के जीवन में एक क्षण आता है जब वासना उसकी कमजोरी, उसकी प्यास, उसका नशा, उसका आवेश नहीं रह जाती। जब वासना उसकी हमदर्दी का, उसकी सान्त्वना का साधन बन जाती है। जब वह नारी को इसलिए बाँहों में नहीं समेटता कि उसकी बाँहें प्यासी हैं, वह इसलिए उसे बाँहों में समेट लेता है कि नारी अपना दुःख भूल जाये। जिस वक्त वह नारी की सीपिया पलकों के नशे में नहीं वरन् उसकी आँखों के आँसू सुखाने के लिए उसकी पलकों पर होठ रख देता है, जीवन के उस क्षण में पुरुष

जिस नारी से सहानुभूति रखता है, उसके मन की पराजय को भुलाने के लिए वह नारी को बाहुपाश के नशे में बहला देना चाहता है! लेकिन इन बाहुपाशों में प्यास ज़रा भी नहीं होती, आग ज़रा भी नहीं होती, सिर्फ नारी को बहलावा देने का प्रयास मात्र होता है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि चन्दर के मन पर छाया हुआ पम्मी के रूप का गुलाबी बादल उचटता जा रहा था, नशा उखड़ा-सा रहा था। लेकिन चन्दर पम्मी को दुःखी नहीं करना चाहता था, वह भरसक पम्मी को बहलाये रखता था... लेकिन उसके मन में कहीं-न-कहीं फिर अन्तर्द्वन्द्व का एक तूफान चलने लगा था...

गेसू ने उसके सामने उसकी साल भर पहले की जिन्दगी का वह चित्र रख दिया था, जिसकी एक झलक उस अभागे को पागल कर देने के लिए काफी थी। चन्दर जैसे-तैसे मन को पत्थर बनाकर, अपनी आत्मा को रूप की शराब में डुबोकर, अपने विश्वासों में छलकर उसको भुला पाया था। उसे जीता पाया था। लेकिन गेसू ने और गेसू की बातों ने जैसे उसके मन में मूर्च्छित पड़ी अभिशाप की छाया में फिर प्राण-प्रतिष्ठा कर दी थी और आधी रात के सन्नाटे में फिर चन्दर को सुनाई देता था कि उसके मन में कोई काली छाया बार-बार सिसकने लगती है और चन्दर के हृदय से टकराकर वह रुदन बार-बार कहता था, “देवता! तुमने मेरी हत्या कर डाली! मेरी हत्या, जिसे तुमने स्वर्ग और ईश्वर से बढ़कर माना था...” और चन्दर इन आवाजों से घबरा उठता था।

विस्मरण की एक तरंग जहाँ चन्दर को पम्मी के पास खींच लायी थी, वहाँ अतीत के स्मरण की दूसरी तरंग उसे वेग में उलझाकर जैसे फिर उसे दूर खींच ले जाने के लिए व्याकुल हो उठी। उसको लगा कि पम्मी के लिए उसके मन में जो मादक नशा था, उस पर ग्लानि का कोहरा छाता जा रहा है और अभी तक उसने जो कुछ किया था, उसके लिए उसी के मन में कहीं-न-कहीं पर हल्की-सी अरुचि झलकने लगी थी। फिर भी पम्मी का जादू बदस्तूर कायम था। वह पम्मी के प्रति कृतज्ञ था और वह पम्मी को कहीं, किसी भी हालत में दुःखी नहीं करना चाहता था। भले वह गुनाह करके अपनी कृतज्ञता जाहिर क्यों न कर पाये, लेकिन जैसे बिनती के मन में चन्दर के प्रति जो श्रद्धा थी, वह नैतिकता-अनैतिकता के बन्धन से ऊपर उठकर थी, वैसे ही चन्दर के मन में पम्मी के प्रति कृतज्ञता पुण्य और पाप के बन्धन से ऊपर उठकर थी। बिनती ने एक दिन चन्दर से कहा था कि यदि वह चन्दर को असन्तुष्ट करती है, तो वह उसे इतना बड़ा गुनाह लगता है कि उसके सामने उसे किसी भी पाप-पुण्य की परवा नहीं है। उसी तरह चन्दर सोचता था कि सम्भव है कि उसका और पम्मी का यह सम्बन्ध पापमय हो, लेकिन इस सम्बन्ध को तोड़कर पम्मी को असन्तुष्ट और दुःखी करना इतना बड़ा पाप होगा जो अक्षम्य है।

लेकिन वह नशा टूट चुका था, वह साँस धीमी पड़ गयी थी... अपनी हर कोशिश के बावजूद वह पम्मी को उदास होने से बचा न पाता था।

एक दिन सुबह जब वह कॉलेज जा रहा था कि पम्मी की कार आयी। पम्मी बहुत ही उदास थी। चन्दर ने आते ही उसका स्वागत किया। उसके कानों में एक नीले पत्थर का बुन्दा था, जिसकी हल्की छाँह गालों पर पड़ रही थी। चन्दर ने झुककर वह नीली छाँह चूम ली।

पम्मी कुछ नहीं बोली। वह बैठ गयी और फिर चन्दर से बोली, "मैं लखनऊ जा रही हूँ, कपूर!"

"कब? आज?"

"हाँ, अभी कार से।"

"क्यों?"

"यों ही, मन ऊब गया! पता नहीं, कौन-सी छाँह मुझ पर छा गयी है। मैं शायद लखनऊ से मसूरी चली जाऊँ।"

"मैं तुम्हें जाने नहीं दूँगा, पहले तो तुमने बताया नहीं!"

"तुम्हीं ने कहाँ पहले बताया था!"

"क्या?"

"कुछ भी नहीं! अच्छा, चल रही हूँ।"

"सुनो तो!"

"नहीं, अब रोक नहीं सकते तुम... बहुत दूर जाना है चन्दर..." वह चल दी। फिर वह लौटी और जैसे युगों-युगों की प्यास बुझा रही हो, चन्दर के गले में झूल गयी और कस लिया चन्दर को... पाँच मिनट बाद सहसा वह अलग हो गयी और फिर बिना कुछ बोले अपनी कार में बैठ गयी। "पम्मी...तुम्हें हुआ क्या यह?"

"कुछ नहीं, कपूर।" पम्मी कार स्टार्ट करते हुए बोली, "मैं तुमसे जितनी ही दूर रहूँ उतना ही अच्छा है, मेरे लिए भी, तुम्हारे लिए भी! तुम्हारे इन दिनों के व्यवहार ने मुझे बहुत कुछ सिखा दिया है?"

चन्दर सिर से पैर तक ग्लानि से कुंठित हो उठा। सचमुच वह कितना अभागा है! वह किसी को भी सन्तुष्ट नहीं रख पाया। उसके जीवन में सुधा भी आयी और पम्मी भी, एक को उसके पुण्य ने उससे छीन लिया, दूसरी को उसका गुनाह उससे छीने लिये जा रहा है। जाने उसके ग्रहों का मालिक कितना

क्रूर खिलाड़ी है कि हर कदम पर उसकी राह उलट देता है। नहीं, वह पम्मी को नहीं खो सकता—उसने पम्मी का कॉलर पकड़ लिया, “पम्मी, तुम्हें हमारी कसम है—बुरा मत मानो! मैं तुम्हें जाने नहीं दूँगा।”

पम्मी हँसी—बड़ी ही करुण लेकिन सशक्त हँसी। अपने कॉलर को धीमे-से छुड़ाकर चन्दर की अँगुलियों को कपोलों से दबा दिया और फिर वक्ष के पास से एक लिफाफा निकालकर चन्दर के हाथों में दे दिया और कार स्टार्ट कर दी...पीछे मुड़कर नहीं देखा... नहीं देखा।

कार कड़वे धुँएँ का बादल चन्दर की ओर उड़ाकर आगे चल दी।

जब कार ओझल हो गयी, तब चन्दर को होश आया कि उसके हाथ में एक लिफाफा भी है। उसने सोचा, फौरन कार लेकर जाये और पम्मी को रोक ले। फिर सोचा, पहले पढ़ तो ले, यह है क्या चीज? उसने लिफाफा खोला और पढ़ने लगा—

“कपूर, एक दिन तुम्हारी आवाज और बर्ती की चीख सुनकर अपूर्ण वेश में ही अपने श्रृंगार-गृह से भाग आयी थी और तुम्हें फूलों के बीच में पाया था, आज तुम्हारी आवाज मेरे लिए मूक हो गयी है और असन्तोष और उदासी के काँटों के बीच मैं तुम्हें छोड़कर जा रही हूँ।

जा रही हूँ इसलिए कि अब तुम्हें मेरी जरूरत नहीं रही। झूठ क्यों बोलूँ, अब क्या, कभी भी तुम्हें मेरी जरूरत नहीं रही थी, लेकिन मैंने हमेशा तुम्हारा दुरुपयोग किया। झूठ क्यों बोलें, तुम मेरे पति से भी अधिक समीप रहे हो। तुमसे कुछ छिपाऊँगी नहीं। मैं तुमसे मिली थी, जब मैं एकाकी थी, उदास थी, लगता था कि उस समय तुम मेरी सुनसान दुनिया में रोशनी के देवदूत की तरह आये थे। तुम उस समय बहुत भोले, बहुत सुकुमार, बहुत ही पवित्र थे। मेरे मन में उस दिन तुम्हारे लिए जाने कितना प्यार उमड़ आया! मैं पागल हो उठी। मैंने तुम्हें उस दिन सेलामी की कहानी सुनायी थी, सिनेमा घर में, उसी अभागिन सेलामी की तरह मैं भी पैगम्बर को चूमने के लिए व्याकुल हो उठी।

देखा, तुम पवित्रता को प्यार करते हो। सोचा, यदि तुमसे प्यार ही जीतना है, तो तुमसे पवित्रता की ही बातें करूँ। मैं जानती थी कि सेक्स प्यार का आवश्यक अंग है। लेकिन मन में तीखी प्यास लेकर भी मैंने तुमसे सेक्स-विरोधी बातें करनी शुरू कीं। मुँह पर पवित्रता और अन्दर में भोग का सिद्धान्त रखते हुए भी मेरा अंग-अंग प्यासा हो उठा था...तुम्हें होठों तक खींच लायी थी, लेकिन फिर साहस नहीं हुआ।

फिर मैंने उस छोकरी को देखा, उस नितान्त प्रतिभाहीन दुर्बलमना छोकरी मिस

सुधा को। वह कुछ भी नहीं थी, लेकिन मैं देखते ही जान गयी थी कि तुम्हारे भाग्य का नक्षत्र है, जाने क्यों उसे देखते ही मैं अपना आत्मविश्वास खो-सा बैठी। उसके व्यक्तित्व में कुछ न होते हुए भी कम-से-कम अजब-सा जादू था, यह मैं भी स्वीकार करती हूँ, लेकिन थी वह छोकरी ही!

तुम्हें न पाने की निराशा और तुम्हें न पाने की असीम प्यास, दोनों के पीस डालने वाले संघर्ष से भागकर, मैं हिमालय में चली आयी। जितना तीखा आकर्षण होता है कपूर कभी-कभी नारी उतनी ही दूर भागती है। अगर कोई प्याला मुँह से न लगाकर दूर फेंक दे, तो समझ लो कि वह बेहद प्यासा है, इतना प्यासा कि तृप्ति की कल्पना से भी घबराता है। दिन-रात उस पहाड़ी की धवल चोटियों में तुम्हारी निगाहें मुसकराती थीं, पर मैं लौटने का साहस न कर पाती थी।

लौटी तो देखा कि तुम अकेले हो, निराश हो। और थोड़ा-थोड़ा उलझे हुए भी हो। पहले मैंने तुम पर पवित्रता की आड़ में विजय पानी चाही थी, अब तुम पर वासना का सहारा लेकर छा गयी। तुम मुझे बुरा समझ सकते हो, लेकिन काश कि प्यास को समझ पाते, कपूर! तुमने मुझे स्वीकार किया। वैसे नहीं जैसे कोई फूल शबनम को स्वीकार करे। तुमने मुझे उस तरह स्वीकार किया जैसे कोई बीमार आदमी माफिया (अफीम) के इंजेक्शन को स्वीकार करे। तुम्हारी प्यासी और बीमार प्रवृत्तियाँ बदली नहीं, सिर्फ बेहोश होकर सो गयीं।

लेकिन कपूर, पता नहीं किसके स्पर्श से वे एकाएक बिखर गयीं। मैं जानती हूँ, इधर तुममें क्या परिवर्तन आ गया है। मैं तुम्हें उसके लिए अपराधी नहीं ठहराती, कपूर! मैं जानती हूँ तुम मेरे प्रति अब भी कितने कृतज्ञ हो, कितने स्नेहशील हो लेकिन अब तुममें वह प्यास नहीं, वह नशा नहीं। तुम्हारे मन की वासना अब मेरे लिए एक तरस में बदलती जा रही है।

मुझे वह दिन याद है, अच्छी तरह याद है चन्दर, जब तुम्हारे जलते हुए होठों ने इतनी गहरी वासना से मेरे होठों को समेट लिया था कि मेरे लिए अपना व्यक्तित्व ही एक सपना बन गया था। लगता था, सभी सितारों का तेज भी इसकी एक चिनगारी के सामने फीका है। लेकिन आज होठ होठ हैं, आग के फूल नहीं रहे—पहले मेरी एक झलक से तुम्हारे रोम-रोम में सैकड़ों इच्छाओं की आँधियाँ गरज उठती थीं... आज तुम्हारी नसों का खून ठंडा है। तुम्हारी निगाहें पथरायी हुई हैं और तुम इस तरह वासना मेरी ओर फेंक देते हो, जैसे तुम किसी पालतू बिल्ली को पावरोटी का टुकड़ा दे रहे हो।

मैं जानती हूँ कि हम दोनों के सम्बन्धों की उष्णता खत्म हो गयी है। अब तुम्हारे

मन में महज एक तरस है, एक कृतज्ञता है, और कपूर, वह मैं स्वीकार नहीं कर सकूँगी। क्षमा करना, मेरा भी स्वाभिमान है।

लेकिन मैंने कह दिया कि मैं तुमसे छिपाऊँगी नहीं! तुम इस भ्रम में कभी मत रहना कि मैंने तुम्हें प्यार किया था। पहले मैं भी यही सोचती थी। कल मुझे लगा कि मैंने अपने को आज तक धोखा दिया था। मैंने इधर तुम्हारी खिन्नता के बाद अपने जीवन पर बहुत सोचा, तो मुझे लगा कि प्यार जैसी स्थायी और गहरी भावना शायद मेरे जैसे रंगीन बहिर्मुख स्वभावशाली के लिए है ही नहीं। प्यार जैसी गम्भीर और खतरनाक तूफानी भावना को अपने कन्धों पर ढोने का खतरा देवता या बुद्धिहीन ही उठा सकते हैं—तुम उसे वहन कर सकते हो (कर रहे हो। प्यार की प्रतिक्रिया भी प्यार की ही परिचायक है कपूर), मेरे लिए आँसुओं की लहरों में डूब जाना सम्भव नहीं। या तो प्यार आदमी को बादलों की ऊँचाई तक उठा ले जाता है, या स्वर्ग से पाताल में फेंक देता है। लेकिन कुछ प्राणी हैं, जो न स्वर्ग के हैं न नरक के, वे दोनों लोकों के बीच में अन्धकार की परतों में भटकते रहते हैं। वे किसी को प्यार नहीं करते, छायाओं को पकड़ने का प्रयास करते हैं, या शायद प्यार करते हैं या निरन्तर नयी अनुभूतियों के पीछे दीवाने रहते हैं और प्यार बिल्कुल करते ही नहीं। उनको न दुःख होता है न सुख, उनकी दुनिया में केवल संशय, अस्थिरता और प्यास होती है... कपूर, मैं उसी अभागे लोक की एक प्यासी आत्मा थी। अपने एकान्त से घबराकर तुम्हें अपने बाहुपाश में बाँधकर तुम्हारे विश्वास को स्वर्ग से खींच लायी थी। तुम स्वर्ग-भ्रष्ट देवता, भूलकर मेरे अभिशप्त लोक में आ गये थे।

आज मालूम होता है कि फिर तुम्हारे विश्वास ने तुम्हें पुकारा है। मैं अपनी प्यास में खुद धधक उठूँ, लेकिन तुम्हें मैंने अपना मित्र माना था। तुम पर मैं आँच नहीं आने देना चाहती। तुम मेरे योग्य नहीं, तुम अपने विश्वासों के लोक में लौट जाओ।

मैं जानती हूँ तुम मेरे लिए चिन्तित हो। लेकिन मैंने अपना रास्ता निश्चित कर लिया है। स्त्री बिना पुरुष के आश्रय के नहीं रह सकती। उस अभागी को जैसे प्रकृति ने कोई अभिशाप दे दिया है।... मैं थक गयी हूँ इस प्रेमलोक की भटकन से।... मैं अपने पति के पास जा रही हूँ। वे क्षमा कर देंगे, मुझे विश्वास है।

उन्हीं के पास क्यों जा रही हूँ? इसलिए मेरे मित्र, कि मैं अब सोच रही हूँ कि स्त्री स्वाधीन नहीं रह सकती। उसके पास पत्नीत्व के सिवा कोई चारा नहीं। जहाँ ज़रा स्वाधीन हुई कि बस उसी अन्धकूप में जा पड़ती है जहाँ मैं थी। वह अपना शरीर भी खोकर तृप्ति नहीं पाती। फिर प्यार से तो मेरा विश्वास जैसे उठा जा रहा है, प्यार स्थायी नहीं होता। मैं ईसाई हूँ, पर सभी अनुभवों के बाद मुझे पता लगता है कि हिन्दुओं के

यहाँ प्रेम नहीं वरन् धर्म और सामाजिक परिस्थितियों के आधार पर विवाह की रीति बहुत वैज्ञानिक और नारी के लिए सबसे ज्यादा लाभदायक है। उसमें नारी को थोड़ा बन्धन चाहे क्यों न हो लेकिन दायित्व रहता है, सन्तोष रहता है, वह अपने घर की रानी रहती है। काश कि तुम समझ पाते कि खुले आकाश में इधर-उधर भटकने के बाद, तूफानों से लड़ने के बाद मैं कितनी आतुर हो उठी हूँ बन्धनों के लिए, और किसी सशक्त डाल पर बने हुए सुखद, सुकोमल नीड़ में बसेरा लेने के लिए। जिस नीड़ को मैं इतने दिनों पहले उजाड़ चुकी थी, आज वह फिर मुझे पुकार रहा है। हर नारी के जीवन में यह क्षण आता है और शायद इसीलिए हिन्दू प्रेम के बजाय विवाह को अधिक महत्त्व देते हैं।

मैं तुम्हारे पास नहीं रुकी। मैं जानती थी कि हम दोनों के सम्बन्धों में प्रारम्भ से इतनी विचित्रताएँ थीं कि हम दोनों का सम्बन्ध स्थायी नहीं रह सकता था, फिर भी जिन क्षणों में हम दोनों एक ही तूफान में फँस गये थे, वे क्षण मेरे लिए अमूल्य निधि रहेंगे। तुम बुरा न मानना। मैं तुमसे ज़रा भी नाराज नहीं हूँ। मैं न अपने को गुनहगार मानती हूँ, न तुम्हें, फिर भी अगर तुम मेरी सलाह मान सको तो मान लेना। किसी अच्छी-सी सीधी-सादी हिन्दू लड़की से अपना विवाह कर लेना। किसी बहुत बौद्धिक लड़की, जो तुम्हें प्यार करने का दम भरती हो, उसके फन्दे में न फँसना कपूर, मैं उम्र और अनुभव दोनों में तुमसे बड़ी हूँ। विवाह में भावना या आकर्षण अक्सर जहर बिखेर देता है। ब्याह करने के बाद एक-आध महीने के लिए अपनी पत्नी सहित मेरे पास जरूर आना, कपूर। मैं उसे देखकर वह सन्तोष पा लूँगी, जो हमारी सभ्यता ने हम अभागों से छीन लिया है।

अभी मैं साल भर तक तुमसे नहीं मिलूँगी। मुझे तुमसे अब भी डर लगता है लेकिन इस बीच में तुम बर्तों का खयाल रखना। कभी-कभी उसे देख लेना। रुपये की कमी तो उसे न होगी। बीवी भी उसे ऐसी मिल गयी है, जिसने उसे ठीक कर दिया है... उस अभागे भाई से अलग होते हुए मुझे कैसा लग रहा है, यह तुम जानते, अगर तुम बहन होते।

अगला पत्र तुम्हें तभी लिखूँगी जब मेरे प्रति से मेरा समझौता हो जायेगा... नाराज तो नहीं हो?

—प्रमिला डिक्रूज।”

चन्दर पम्मी को लौटाने नहीं गया। कॉलेज भी नहीं गया। एक लम्बा-सा खत बिनती को लिखता रहा और इसकी प्रतिलिपि कर दोनों नत्थी कर भेज दिये और उसके बाद थककर सो गया... बिना खाना खाये!

तीन

गर्मियों की छुट्टियाँ हो गयी थीं और चन्दर छुट्टियाँ बिताने दिल्ली गया था। सुधा भी आयी हुई थी। लेकिन चन्दर और सुधा में बोलचाल नहीं थी। एक दिन शाम के वक्त डॉक्टर साहब ने चन्दर से कहा, “चन्दर, सुधा इधर बहुत अनमनी रहती है, जाओ इसे कहीं घुमा लाओ।” चन्दर बड़ी मुश्किल से राजी हुआ। दोनों पहले कनाॅट प्लेस पहुँचे। सुधा ने बहुत फीकी और टूटती हुई आवाज में कहा, “यहाँ बहुत भीड़ है, मेरी तबीयत खराब होती है।” चन्दर ने कार घुमा दी शहर से बाहर रोहतक की सड़क पर, दिल्ली से पन्द्रह मील दूर। चन्दर ने एक बहुत हरी-भरी जगह में कार रोक दी। किसी बहुत पुराने पीर का टूटा-फूटा मजार था और कब्र के चबूतरे को फाड़कर एक नीम का पेड़ उग आया था। चबूतरे के दो-तीन पत्थर गिर गये थे। चार-पाँच नीम के पेड़ लगे थे और कब्र के पत्थर के पास एक चिराग बुझा हुआ पड़ा था और कई एक सूखी हुई फूल-मालाएँ हवा से उड़कर नीचे गिर गयी थीं। कब्र के आसपास ढेरों नीम के तिनके और सूखे हुए नीम के फूल जमा थे।

सुधा जाकर चबूतरे पर बैठ गयी। दूर-दूर तक सन्नाटा था। न आदमी न आदमजाद। सिर्फ गोधूलि के अलसाते हुए झोंकों में नीम चरमरा उठते थे। चन्दर आकर सुधा की दूसरी ओर बैठ गया। चबूतरे पर इस ओर सुधा और उस ओर चन्दर, बीच में चिर-नीरव कब्र...

सुधा थोड़ी देर बाद मुड़ी और चन्दर की ओर देखा। चन्दर एकटक कब्र की ओर देख रहा था। सुधा ने एक सूखा हार उठाया और चन्दर पर फेंककर कहा, “चन्दर, क्या हमेशा मुझे इसी भयानक नरक में रखोगे? क्या सचमुच हमेशा के लिए तुम्हारा प्यार खो दिया है मैंने?”

“मेरा प्यार?” चन्दर हँसा, उसकी हँसी उस सन्नाटे से भी ज्यादा भयंकर थी...

"मेरा प्यार! अच्छी याद दिलायी तुमने! मैं आज प्यार में विश्वास नहीं करता। या यह कहूँ कि प्यार के उस रूप में विश्वास नहीं करता!"

"फिर?"

"फिर क्या, उस समय मेरे मन में प्यार का मतलब था त्याग, कल्पना, आदर्श। आज मैं समझ चुका हूँ कि यह सब झूठी बातें हैं, खोखले सपने हैं!"

"तब?"

"तब! आज मैं विश्वास करता हूँ कि प्यार के माने सिर्फ एक हैं; शरीर का सम्बन्ध! कम-से-कम औरत के लिए। औरत बड़ी बातें करेगी, आत्मा, पुनर्जन्म, परलोक का मिलन, लेकिन उसकी सिद्धि सिर्फ शरीर में है और वह अपने प्यार की मंजिलें पार कर पुरुष को अन्त में एक ही चीज देती है—अपना शरीर। मैं तो अब यह विश्वास करता हूँ सुधा कि वही औरत मुझे प्यार करती है जो मुझे शरीर दे सकती है। बस, इसके अलावा प्यार का कोई रूप अब मेरे भाग्य में नहीं।" चन्दर की आँख कुछ धधक रहा था... सुधा उठी, और चन्दर के पास खड़ी हो गयी—“चन्दर, तुम भी एक दिन ऐसे हो जाओगे, इसकी मुझे कभी उम्मीद नहीं थी। काश कि तुम समझ पाते कि...” सुधा ने बहुत दर्द भरे स्वर में कहा।

“स्नेह है!” चन्दर ठठाकर हँस पड़ा—और उसने सुधा की ओर मुड़कर कहा, “और अगर मैं उस स्नेह का प्रमाण माँगूँ तो? सुधा!” दाँत पीसकर चन्दर बोला, “अगर तुमसे तुम्हारा शरीर माँगूँ तो?”

“चन्दर!” सुधा चीखकर पीछे हट गयी। चन्दर उठा और पागलों की तरह उसने सुधा को पकड़ लिया, “यहाँ कोई नहीं है—सिवा इस कब्र के। तुम क्या कर सकती हो? बहुत दिन से मन में एक आग सुलग रही है। आज तुम्हें बर्बाद कर दूँ तो मन की नारकीय वेदना बुझ जाए.... बोलो!” उसने अपनी आँख की पिघली हुई आग सुधा की आँखों में भरकर कहा।

सुधा क्षण-भर सहमी-पथरायी दृष्टि से चन्दर की ओर देखती रही फिर सहसा शिथिल पड़ गयी और बोली, “चन्दर, मैं किसी की पत्नी हूँ। यह जन्म उनका है। यह माँग का सिन्दूर उनका है। इस शरीर का शृंगार उनका है। मुझे गला घोटकर मार डालो। मैंने तुम्हें बहुत तकलीफ दी है। लेकिन...”

“लेकिन...” चन्दर हँसा और सुधा को छोड़ दिया, “मैं तुम्हें स्नेह करती हूँ, लेकिन यह जन्म उनका है। यह शरीर उनका है—हः! हः! क्या अन्दाज हैं प्रवंचना के जाओ सुधा... मैं तुमसे मजाक कर रहा था। तुम्हारे इस जूठे तन में रखा क्या है?”

सुधा अलग हटकर खड़ी हो गयी। उसकी आँखों से चिनगारियाँ झरने लगीं, “चन्दर,

तुम जानवर हो गये; मैं आज कितनी शर्मिन्दा हूँ। इसमें मेरा कसूर है, चन्दर! मैं अपने को दंड दूँगी, चन्दर! मैं मर जाऊँगी! लेकिन तुम्हें इन्सान बनना पड़ेगा, चन्दर!" और सुधा ने अपना सिर एक टूटे हुए खम्भे पर पटक दिया।

चन्दर की आँख खुल गयी, वह थोड़ी देर तक सपने पर सोचता रहा। फिर उठा। बहुत अजब-सा मन था उसका। बहुत पराजित, बहुत खोया हुआ-सा, बेहद खिसियाहट से भरा हुआ था। उसके मन में एकाएक खयाल आया कि वह किसी मनोरंजन में जाकर अपने को डुबो दे—बहुत दिनों से उसने सिनेमा नहीं देखा था। उन दिनों बर्नार्ड शॉ का 'सीजर ऐंड क्लियोपेट्रा' लगा हुआ था, उसने सोचा कि पम्मी की मित्रता का परिपाक सिनेमा में हुआ था, उसका अन्त भी वह सिनेमा देखकर मनाएगा। उसने कपड़े पहने, चार बजे से मैटिनी थी, और वक्त हो रहा था। कपड़े पहनकर वह शीशे के सामने आकर बाल सँवारने लगा। उसे लगा, शीशे में पड़ती हुई उसकी छाया उससे कुछ भिन्न है, उसने और गौर से देखा—छाया रहस्यमय ढंग से मुस्करा रही थी; वह सहसा बोली—

"क्या देख रहा है? 'मुखड़ा क्या देखे दरपन में।' एक लड़की से पराजित और दूसरी से सपने में प्रतिहिंसा लेने का कलंक नहीं दिख पड़ता तुझे? अपनी छवि निरख रहा है? पापी! पतित!"

कमरे की दीवारों ने दोहराया—"पापी! पतित!"

चन्दर तड़प उठा, पागल-सा हो उठा। कंधा फेंककर बोला, "कौन है पापी? मैं हूँ पापी? मैं हूँ पतित? मुझे तुम नहीं समझते। मैं चिर-पवित्र हूँ। मुझे कोई नहीं जानता।"

"कोई नहीं जानता! हा, हा!" प्रतिबिम्ब हँसा, "मैं तुम्हारी नस-नस जानता हूँ। तुम वही हो न जिसने आज से डेढ़ साल पहले सपना देखा सुधा के हाथ से लेकर अमृत बाँटने का, दुनिया को नया सन्देश देकर पैगम्बर बनने का। नया सन्देश! खूब नया सन्देश दिया मसीहा! पम्मी... बिनती... सुधा... कुछ और छोकरियाँ बटोर ले। चरित्रहीन!"

"मैंने किसी को नहीं बटोरा! जो मेरी जिन्दगी में आया, अपने-आप आया, जो चला गया, उसे मैंने रोका नहीं। मेरे मन में कहीं भी अहम की प्यास नहीं थी, कभी भी स्वार्थ नहीं था। क्या मैं चाहता तो सुधा को अपने एक इशारे से अपनी बाँहों में नहीं बाँध सकता था!"

"शाबाश! और नहीं बाँध पाये तो सुधा से भी जी भरकर बदला निकाल रहा है। वह मर रही है और तू उस पर नमक छिड़कने से बाज नहीं आया। और आज तो उसे एकान्त में भ्रष्ट करने का सपना देख अपनी पलकों को देवमन्दिर की तरह पवित्र बना लिया तूने! कितनी उन्नति की है तेरी आत्मा ने! इधर आ, तेरा हाथ चूम लूँ।"

“चुप रहो! पराजय की इस वेला में कोई भी व्यंग्य करने से बाज नहीं आता। मैं पागल हो जाऊँगा।”

“और अभी क्या पागलों से कम है तू? अहंकारी पशु! तू बर्ती से भी गया-गुजरा है। बर्ती पागल था, लेकिन पागल कुत्तों की तरह काटना नहीं जानता था। तू काटना भी जानता है और अपने भयानक पागलपन को साधना और त्याग भी साबित करता रहता है। दम्भी!”

“बस करो, अब तुम सीमा लाँघ रहे हो।” चन्दर ने मुट्ठियाँ कसकर जवाब दिया।

“क्यों, गुस्सा हो गये, मेरे दोस्त! अहंवादी इतने बड़े हो और अपनी तस्वीर देखकर नाराज होते हो! आओ, तुम्हें आहिस्ते से समझाऊँ, अभागो! तू कहता है तूने स्वार्थ नहीं किया। विकलांग देवता! वही स्वार्थी है जो अपने से ऊपर नहीं उठ पाता! तेरे लिए अपनी एक साँस भी दूसरे के मन के तूफान से भी ज्यादा महत्वपूर्ण रही है। तूने अपने मन की उपेक्षा के पीछे सुधा को भट्ठी में झोंक दिया। पम्मी के अस्वस्थ मन को पहचानकर भी उसके रूप का उपभोग करने में नहीं हिचका, बिनती को प्यार न करते हुए भी बिनती को तूने स्वीकार किया, फिर सबों का तिरस्कार करता गया... और कहता है तू स्वार्थी नहीं। बर्ती पागल हो लेकिन स्वार्थी नहीं है।”

“ठहरो, गालियाँ मत दो, मुझे समझाओ न कि मेरे जीवन-दर्शन में कहाँ पर गलती रही है! गालियों से मेरा कोई समझौता नहीं।”

“अच्छा, समझो! देखो, मैं यह नहीं कहता कि तुम ईमानदार नहीं हो, तुम शक्तिशाली नहीं हो, लेकिन तुम अन्तर्मुखी रहे, घोर व्यक्तिवादी रहे, अहंकारग्रस्त रहे। अपने मन की विकृतियों को भी तुमने अपनी ताकत समझने की कोशिश की। कोई भी जीवन-दर्शन सफल नहीं होता अगर उसमें बाह्य-यथार्थ और व्यापक-सत्य धूप-छाँह की तरह न मिला हो। मैं मानता हूँ कि तूने सुधा के साथ ऊँचाई निभायी, लेकिन अगर तेरे व्यक्तित्व को, तेरे मन को, ज़रा-सी ठेस पहुँचती तो तू गुमराह हो गया होता। तूने सुधा के स्नेह का निषेध कर दिया। तूने बिनती की श्रद्धा का तिरस्कार किया। तूने पम्मी की पवित्रता भ्रष्ट की... और इसे अपनी साधना समझता है? तू याद कर; कहाँ था तू एक वर्ष पहले और अब कहाँ है?”

चन्दर ने बड़ी कातरता से प्रतिबिम्ब की ओर देखा और बोला, “मैं जानता हूँ, मैं गुमराह हूँ लेकिन बेईमान नहीं! तुम मुझे क्यों धिक्कार रहे हो! तुम कोई रास्ता बता दो न! एक बार उसे भी आजमा लूँ।”

“रास्ता बताऊँ! जो रास्ता तुमने एक बार बनाया था, उसी पर तुम मजबूत रह पाये? फिर क्या एक के बाद दूसरे रास्ते पर चहलकदमी करना चाहते हो? देखो कपूर, ध्यान से सुनो। तुमसे शायद किसी ने कभी कहा था, शायद बर्टी ने कहा था कि आदमी तभी तक बड़ा रहता है जब तक वह निषेध करता चलता है। पता नहीं किस मानसिक आवेश में एक के बाद दूसरे तत्त्व का विध्वंस और विनाश करता चलता है। हर चट्टान को उखाड़कर फेंकता रहता है और तुमने यही जीवन-दर्शन अपना लिया था, भूल से या अपने अनजाने में ही। तुम्हारी आत्मा में एक शक्ति थी, एक तूफान था। लेकिन यह लक्ष्य भ्रष्ट था। तुम्हारी जिन्दगी में लहरें उठने लगीं लेकिन गहराई नहीं। और याद रखो चन्द्र, सत्य उसे मिलता है जिसकी आत्मा शान्त और गहरी होती है समुद्र की गहराई की तरह। समुद्र की ऊपरी सतह की तरह जो विक्षुब्ध और तूफानी होता है, उसके अन्तर्द्वन्द्व में चाहे कितनी गरज हो लेकिन सत्य की शान्त अमृतमयी आवाज नहीं होती।”

“लेकिन वह गहराई मुझे मिली नहीं?”

“बताता हूँ—घबराते क्यों हो! देखो, तुममें बहुत बड़ा अधैर्य रहा है। शक्ति रही, पर धैर्य और दृढ़ता बिल्कुल नहीं। तुम गम्भीर समुद्रतल न बनकर एक सशक्त लेकिन अशान्त लहर बन गये जो हर किनारे से टकराकर उसे तोड़ने के लिए व्यग्र हो उठी। तुममें ठहराव नहीं था। साधना नहीं थी! जानते हो क्यों? तुम्हें जहाँ से ज़रा भी तकलीफ मिली, अवरोध मिला वहीं से तुमने अपना हाथ खींच लिया! वहीं तुम भाग खड़े हुए। तुमने हमेशा उसका निषेध किया—पहले तुमने समाज का निषेध किया, व्यक्ति को साधना का केन्द्र बनाया; फिर व्यक्ति का भी निषेध किया। अपने विचारों में, अन्तर्मुखी भावनाओं में डूब गये, कर्म का निषेध किया। फिर तो कर्म में ऐसी भागदौड़, ऐसी विमुखता शुरू हुई कि बस! न मानवता का प्यार जीवन में प्रतिफलित कर सका, न सुधा का। पम्मी हो या बिनती, हरेक से तू निष्क्रिय खिलौने की तरह खेलता गया। काश कि तूने समाज के लिए कुछ किया होता! सुधा के लिए कुछ किया होता लेकिन तू कुछ न कर पाया। जिसने तुझे जिधर चाहा उधर उत्प्रेरित कर दिया और तू अन्धे और इच्छाविहीन परतन्त्र अन्धड़ की तरह उधर ही हू-हू करता हुआ दौड़ गया। माना मैंने कि समाज के आधार पर बने जीवन-दर्शन में कुछ कमियाँ हैं : लेकिन अंशतः ही उसे स्वीकार कर कुछ काम करता, माना कि सुधा के प्यार से तुझे तकलीफ हुई पर उसकी महत्ता के ही आधार पर तू कुछ निर्माण कर ले जाता। लेकिन तू तो ज़रा-से अवरोध के बहाने सम्पूर्ण का निषेध करता गया। तेरा जीवन निषेधों की निष्क्रियता की मानसिक प्रतिक्रियाओं की शृंखला रहा है। अभागो, तूने हमेशा जिन्दगी का निषेध किया है। दुनिया को स्वीकार करता,

यथार्थ को स्वीकार करता, जिन्दगी को स्वीकार करता और उसके आधार पर अपने मन को, अपने मन के प्यार को, अपने जीवन को सन्तुलित करता, आगे बढ़ता लेकिन तूने अपनी मन की गंगा को व्यक्ति की छोटी-सी सीमा में बाँध लिया, उसे एक पोखरा बना दिया, पानी सड़ गया, उसमें गन्ध आने लगी, सुधा के प्यार की सीपी जिसमें सत्य और सफलता का मोती बन सकता था, वह मर गयी और रुके हुए पानी में विकृति और वासना के कीड़े कुलबुलाने लगे। शाबाश! क्या अमृत पाया है तूने! धन्य है, अमृत-पुत्र!"

"बस करो! यह व्यंग्य मैं नहीं सह सकता! मैं क्या करता!"

"कैसी लाचारी का स्वर है! छिः, असफल पैगम्बर! साधना यथार्थ को स्वीकार करके चलती है, उसका निषेध करके नहीं। हमारे यहाँ ईश्वर को कहा गया है नेति नेति, इसका मतलब यह नहीं कि ईश्वर परम निषेध स्वरूप है। गलत, नेति में 'न' तो केवल एक वर्ण है। 'इति' दो वर्ण हैं। एक निषेध तो कम-से-कम दो स्वीकृतियाँ। इसी अनुपात में कल्पना और यथार्थ का समन्वय क्यों नहीं किया तूने?"

"मैं नहीं समझ पाता—यह दर्शन मेरी समझ में नहीं आता!"

"देखो, इसको ऐसे समझो। घबराओ मत! कैलाश ने अगर नारी के व्यक्तित्व को नहीं समझा, सुधा की पवित्रता को तिरस्कृत किया, लेकिन उसने समाज के लिए कुछ तो किया। गेसू ने अपने विवाह का निषेध किया, लेकिन अख्तर के प्रति अपने प्यार का निषेध तो नहीं किया। अपने व्यक्तित्व का निर्माण किया। अपने चरित्र का निर्माण किया। यानी गेसू, एक लड़की से तुम हार गये, छिः!"

"लेकिन मैं कितना थक गया था, यह तो सोचो। मन को कितनी ऊँची-नीची घाटियों से, मौत से भी भयानक रास्तों से गुजरने में और कोई होता तो मर गया होगा। मैं जिन्दा तो हूँ!"

"वाह, क्या जिन्दगी है!"

"तो क्या करूँ, यह रास्ता छोड़ दूँ? यह व्यक्तित्व तोड़ डालूँ?"

"फिर वही निषेध और विध्वंस की बातें। छिः देखो, चलने को तो गाड़ी का बैल भी रास्ते पर चलता है! लेकिन सैकड़ों मील चलने के बाद भी वह गाड़ी का बैल ही बना रहता है। क्या तुम गाड़ी के बैल बनना चाहते हो? नहीं कपूर! आदमी जिन्दगी का सफर तय करता है। राह की ठोकें और मुसीबतें उसके व्यक्तित्व को पुख्ता बनाती चलती हैं, उसकी आत्मा को परिपक्व बनाती चलती हैं। क्या तुममें परिपक्वता आयी? नहीं। मैं जानता हूँ, तुम अब मेरा भी निषेध करना चाहते हो। तुम मेरी आवाज को भी चुप करना चाहते हो। आत्म-प्रवंचना तो तेरा पेशा हो गया है। कितना खतरनाक है तू

अब...तू मेरा भी...तिरस्कार...करना...चाहता...है।" और छाया, धीरे-धीरे एक वह बिन्दु बनकर अदृश्य हो गयी।

चन्दर चुपचाप शीशे के सामने खड़ा रहा।

फिर वह सिनेमा नहीं गया।

चन्दर सहसा बहुत शान्त हो गया। एक ऐसे भोले बच्चे की तरह जिसने अपराध कम किया, जिससे नुकसान ज्यादा हो गया था, और जिस पर डाँट बहुत पड़ी थी। अपने अपराध की चेतना से वह बोल भी नहीं पाता था। अपना सारा दुःख अपने ऊपर उतार लेना चाहता था। वहाँ एक ऐसा सन्नाटा था जो न किसी को आने के लिए आमन्त्रित कर सकता था, न किसी को जाने से रोक सकता था। वह एक ऐसा मैदान था जिस पर की सारी पगडंडियाँ तक मिट गयी हों; एक ऐसी डाल थी जिस पर के सारे फूल झर गये हों, सारे घोंसले उजड़ गये हों। मन में उसके असीम कुंठा और वेदना थी, ऐसा था कि कोई उसके घाव छू ले तो वह आँसुओं में बिखर पड़े। वह चाहता था, वह सबसे क्षमा माँग ले, बिनती से, पम्मी से, सुधा से और फिर हमेशा के लिए उनकी दुनिया से चला जाए। कितना दुःख दिया था उसने सबको!

इसी मनःस्थिति में एक दिन गेसू ने उसे बुलाया। वह गया। गेसू की अम्मीजान तो सामने आयीं पर गेसू ने परदे में से ही बातें कीं। गेसू ने बताया कि सुधा का खत आया है कि वह जल्दी ही आयेगी, गेसू से मिलने। गेसू को बहुत ताज्जुब हुआ कि चन्दर के पास कोई खबर क्यों नहीं आयी!

चन्दर जब घर पहुँचा तो कैलाश का एक खत मिला—

“प्रिय चन्दर,

बहुत दिन से तुम्हारा कोई खत नहीं आया, न मेरे पास न इनके पास। क्या नाराज हो हम दोनों से? अच्छा तो लो, तुम्हें एक खुशखबरी सुना दूँ। मैं सांस्कृतिक मिशन में शायद ऑस्ट्रेलिया जाऊँ। डॉक्टर साहब ने कोशिश कर दी है। आधा रुपया मेरा, आधा सरकार का।

तुम्हें भला क्या फुरसत मिलेगी यहाँ आने की! मैं ही इन्हें लेकर दो रोज के लिए आऊँगा। इनकी कोई मुसलमान सखी है वहाँ, उससे ये भी मिलना चाहती हैं। हमारी खातिर का इन्तजाम रखना—मैं 11 मई को सुबह की गाड़ी से पहुँचूँगा।

तुम्हारा—कैलाश।”

सुधा के आने के पहले चन्दर ने घर की ओर नजर दौड़ायी। सिवा ड्राइंगरूम और लॉन के सचमुच बाकी घर इतना गन्दा पड़ा था कि गेसू सच ही कह रही थी कि जैसे घर में प्रेत रहते हों। आदमी चाहे जितना सफाई-पसन्द और सुरुचिपूर्ण क्यों न हो, लेकिन औरत के हाथ में जाने क्या जादू है कि वह घर को छूकर ही चमका देती है। औरत के बिना घर की व्यवस्था सँभल ही नहीं सकती। सुधा और बिनती कोई भी नहीं थी और तीन ही महीने में बँगले का रूप बिगड़ गया था।

उसने सारा बँगला साफ कराया। हालाँकि दो ही दिन के लिए सुधा और कैलाश आ रहे थे, लेकिन उसने इस तरह बँगले की सफाई करायी जैसे कोई नया समारोह हो। सुधा का कमरा बहुत सजा दिया था और सुधा की छत पर दो पलंग डलवा दिये थे। लेकिन इन सब इन्तजामों के पीछे उतनी ही निष्क्रिय भावहीनता थी जैसे कि वह एक होटल का मैनेजर हो और दो आगन्तुकों का इन्तजाम कर रहा हो। बस।

मानसून के दिनों में अगर कभी किसी ने गौर किया हो तो बारिश होने के पहले ही हवा में एक नमी, पत्तियों पर एक हरियाली और मन में एक उमंग-सी छा जाती है। आसमान का रंग बतला देता है कि बादल छानेवाले हैं, बूँदें रिमझिमाने वाली हैं। जब बादल बहुत नजदीक आ जाते हैं, बूँदें पड़ने के पहले ही दूर पर गिरती हुई बूँदों की आवाज वातावरण पर छा जाती है, जिसे धुरवा कहते हैं।

ज्यों-ज्यों सुधा के आने का दिन नजदीक आ रहा था, चन्दर के मन में हवाएँ करवटें बदलने लग गयी थीं। मन में उदास सुनसान में धुरवा उमड़ने-धुमड़ने लगा था। मन उदास सुनसान आकुल प्रतीक्षा में बेचैन हो उठा था। चन्दर अपने को समझ नहीं पा रहा था। नसों में एक अजीब-सी घबराहट मचलने लगी थी, जिसका वह विश्लेषण नहीं करना चाहता था। उसका व्यक्तित्व अब पता नहीं क्यों कुछ भयभीत-सा था।

इम्तहान खत्म हो रहे थे, और जब मन की बेचैनी बहुत बढ़ जाती थी तो परीक्षकों की आदत के मुताबिक वह कापियाँ जाँचने बैठ जाता था। जिस समय परीक्षकों के घर में पारिवारिक कलह हो, मन में अन्तर्द्वन्द्व हो या दिमाग में फितूर हो, उस समय उन्हें काँपियाँ जाँचने से अच्छा शरणस्थल नहीं मिलता। अपने जीवन की परीक्षा में फेल हो जाने की खीझ उतारने के लिए लड़कों को फेल करने के अलावा कोई अच्छा रास्ता ही नहीं है। चन्दर जब बेहद दुःखी होता तो वह काँपियाँ जाँचता।

जिस दिन सुबह सुधा आ रही थी, उस रात को तो चन्दर का मन बिल्कुल बेकाबू-सा हो गया। लगता था जैसे उसने सोचने-विचाने से ही इनकार कर दिया हो। उस दिन

चन्दर एक क्षण को भी अकेला न रहकर भीड़-भाड़ में खो जाना चाहता था। सुबह वह गंगा नहाने गया, कार लेकर। कॉलेज से लौटकर दोपहर को अपने एक मित्र के यहाँ चला गया। लौटकर आया तो नहाकर एक किताब की दुकान पर चला गया और शाम होने तक वहीं खड़ा-खड़ा किताबें उलटता और खरीदता रहा। वहाँ उसने बिसरिया का गीत-संग्रह देखा जो 'बिनती' नाम बदल उसने 'विप्लव' नाम से छपवा लिया था और प्रमुख प्रगतिशील कवि बन गया था। उसने वह संग्रह भी खरीद लिया।

अब सुधा के आने में मुश्किल से बारह घंटे की देर थी। उसकी तबीयत बहुत घबराने लगी थी और वह बिसरिया के काव्य-संग्रह में डूब गया। उन सड़े हुए गीतों में ही अपने को भुलाने की कोशिश करने लगा और अन्त में उसने अपने को इतना थका डाला कि तीन बजे का अलार्म लगाकर वह सो गया। सुधा की गाड़ी साढ़े चार बजे आती थी।

जब वह जागा तो रात अपने मखमली पंख पसारे नींद में डूबी हुई दुनिया पर शान्ति का आशीर्वाद बिखेर रही थी। ठंडे झोंके लहरा रहे थे और उन झोंकों पर पवित्रता छाई हुई थी। यह पछुआ के झोंके थे। ब्राह्म मुहूर्त में प्राचीन आर्यों ने जो रहस्य पाया था, वह धीरे-धीरे चन्दर की आँखों के सामने खुलने-सा लगा। उसे लगा जैसे यह उसके व्यक्तित्व की नयी सुबह है। एक बड़ा शान्त संगीत उसकी पलकों पर ओस की तरह थिरकने लगा।

क्षितिज के पास एक बड़ा-सा सितारा जगमगा रहा था! चन्दर को लगा जैसे यह उसके प्यार का सितारा है जो जाने किस अज्ञात पाताल में डूब गया था और आज से वह फिर उग गया है। उसने एक अन्धविश्वासी भोले बच्चे की तरह उस सितारे को हाथ जोड़कर कहा, "मेरी कंचन जैसी सुधा रानी के प्यार, तुम कहाँ खो गये थे? तुम मेरे सामने नहीं रहे, मैं जाने किन तूफानों में उलझ गया था। मेरी आत्मा में सारी गुरुता सुधा के प्यार की थी। उसे मैंने खो दिया। उसके बाद मेरी आत्मा पीले पत्ते की तरह तूफान में उड़कर जाने किस कीचड़ में फँस गयी थी। तुम मेरी सुधा के प्यार हो न! मैंने तुम्हें सुधा की भोली आँखों में जगमगाते हुए देखा था। वेदमन्त्रों-जैसे इस पवित्र सुबह में आज फिर मेरे पाप में लिप्त तन को अमृत से धोने आये हो। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि आज सुधा के चरणों पर अपने जीवन के सारे गुनाहों को चढ़ाकर हमेशा के लिए क्षमा माँग लूँगा। लेकिन मेरी साँसों की साँस सुधा! मुझे क्षमा कर दोगी न?" और विचित्र-से भावावेश और पुलक से उसकी आँख में आँसू आ गये। उसे याद आया कि एक दिन सुधा ने उसकी हथेलियों को होंठों से लगाकर कहा था-जाओ, आज तुम सुधा के स्पर्श से पवित्र हो... काश कि आज भी सुधा अपने मिसरी-जैसे होंठों से चन्दर की आत्मा को चूमकर कहे—जाओ चन्दर, अभी तक जिन्दगी के तूफान ने तुम्हारी आत्मा को

बीमार, अपवित्र कर दिया था... आज से तुम वही चन्दर हो। अपनी सुधा के चन्दर। हरिणी-जैसी भोली-भाली सुधा के महान पवित्र चन्दर...

तैयार होकर चन्दर जब स्टेशन पहुँचा तो वह जैसे मोहाविष्ट-सा था। जैसे वह किसी जादू या टोना पढ़ा-हुआ-सा घूम रहा था और वह जादू था सुधा के प्यार का पुनरावर्तन। गाड़ी घण्टा-भर लेट थी। चन्दर को एक पल काटना मुश्किल हो रहा था। अन्त में सिगनल डाउन हुआ। कुलियों में हलचल मची और चन्दर पटरी पर झुककर देखने लगा। सुबह हो गयी थी और इंजन दूर पर एक काले दाग-सा दिखाई पड़ रहा था, धीरे-धीरे वह दाग बड़ा होने लगा और लम्बी-सी हरी पूँछ की तरह लहराती हुई ट्रेन आती दिखाई पड़ी। चन्दर के मन में आया, वह पागल की तरह दौड़कर वहाँ पहुँच जाए। जिस दिन एक घोर अविश्वासी में विश्वास जाग जाता है, उस दिन वह पागल-सा हो उठता है। उसे लग रहा था जैसे इस गाड़ी में सभी डिब्बे खाली हैं। सिर्फ एक डिब्बे में अकेली सुधा होगी। जो आते ही चन्दर को अपनी प्यार-भरी निगाहों में समेट लेगी।

गाड़ी के प्लेटफार्म पर आते ही हलचल बढ़ गयी। कुलियों की दौड़धूप, मुसाफिरों की हड़बड़ी, सामान की उठा-धरी से प्लेटफॉर्म भर गया। चन्दर पागलों-सा इस सब भीड़ को चीरकर डिब्बे देखने लगा। एक दफे पूरी गाड़ी का चक्कर लगा गया। कहीं भी सुधा नहीं दिखाई दी। जैसे आँसू से उसका गला रुँधने लगा। क्या आये नहीं ये लोग! किस्मत कितना व्यंग्य करती है उससे! आज जब वह किसी के चरणों पर अपनी आत्मा उत्सर्ग कर फिर पवित्र होना चाहता था तो सुधा ही नहीं आयी। उसने एक चक्कर और लगाया और निराश होकर लौट पड़ा। सहसा सेकेंड क्लास के एक छोटे-से डिब्बे में से कैलाश ने झाँककर कहा, “कपूर!”

चन्दर मुड़ा, देखा कि कैलाश झाँक रहा है। एक कुली सामान उतारकर खड़ा है। सुधा नहीं है।

जैसे किसी ने झोंके से उसके मन का दीप बुझा दिया। सामान बहुत थोड़ा-सा था। वह डिब्बे में चढ़कर बोला, “सुधा नहीं आयी?”

“आयी हैं, देखो न! कुछ तबीयत खराब हो गयी है। जी मितला रहा है।” और उसने बाथरूम की ओर इशारा कर दिया। सुधा बाथरूम में बगल में लोटा रखे सिर झुकाये बैठी थी—“देखो! देखती हो?” कैलाश बोला, “देखो, कपूर आ गया।” सुधा ने देखा और मुश्किल से हाथ जोड़ पायी होगी कि उसे मितली आ गयी... कैलाश दौड़ा

और उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगा और चन्दर से बोला—“पंखा लाओ!” चन्दर हतप्रभ था। उसके मन ने सपना देखा था... सुधा सितारों की तरह जगमगा रही होगी और अपनी रोशनी की बाँहों में चन्दर के प्राणों को सुला देगी। जादूगरनी की तरह अपने प्यार के पंखों से चन्दर की आत्मा के दाग पोंछ देगी। लेकिन यथार्थ कुछ और था। सुधा जादूगरनी, आत्मा की रानी, पवित्रता की सम्राज्ञी सुधा, बाथरूम में बैठी है और उसका पति उसे सान्त्वना दे रहा था।

“क्या कर रहे हो, चन्दर!... पंखा उठाओ जल्दी से।” कैलाश ने व्यग्रता से कहा। चन्दर चौंक उठा और जाकर पंखा झलने लगा। थोड़ी देर बाद मुँह धोकर सुधा उठी और कराहती हुई-सी जाकर सीट पर बैठ गयी। कैलाश ने एक तकिया पीछे लगा दिया और वह आँख बन्द करके लेट गयी।

चन्दर ने अब सुधा को देखा। सुधा उजड़ चुकी थी। उसका रस मर चुका था। वह अपने यौवन और रूप, चंचलता और मिठास की एक जर्द छाया मात्र रह गयी थी। चेहरा दुबला पड़ गया था और हड्डियाँ निकल आयी थीं। चेहरा दुबला होने से लगता था आँखें फटी पड़ती हैं। वह चुपचाप आँख बन्द किये पड़ी थी। चन्दर पंखा हाँक रहा था, कैलाश एक सूटकेस खोलकर दवा निकाल रहा था। गाड़ी यहीं आकर रुक जाती है, इसलिए कोई जल्दी नहीं थी। कैलाश ने दवा दी। सुधा ने दवा पी और फिर उदास, बहुत बारीक, बहुत बीमार स्वर में बोली, “चन्दर, अच्छे तो हो! इतने दुबले कैसे लगते हो? अब कौन तुम्हारे खाने-पीने की परवा करता होगा!” सुधा ने एक गहरी साँस ली। कैलाश बिस्तर लपेट रहा था।

“तुम्हें क्या हो गया है, सुधा?”

“मुझे सुख-रोग हो गया है?” सुधा बहुत क्षीण हँसी हँसकर बोली, “बहुत सुख में रहने से ऐसा ही हो जाता है।”

चन्दर चुप हो गया। कैलाश ने बिस्तर कुली को देते हुए कहा, “इन्होंने तो बीमारी के मारे हम लोगों को परेशान कर रखा है। जाने बीमारियों को क्या मुहब्बत है इनसे! चलो उठो।” सुधा उठी।

कार पर सुधा के साथ पीछे सामान रख दिया गया और आगे कैलाश और चन्दर बैठे। कैलाश बोला, “चन्दर, तुम बहुत धीमे ड्राइव करना वरना इन्हें चक्कर आने लगेगा...” कार चल दी। चन्दर कैलाश की विदेश यात्रा और कैलाश चन्दर के कॉलेज के बारे में बात करते रहे। मुश्किल से घर तक कार पहुँची होगी कि कैलाश बोला, “यार चन्दर, तुम्हें तकलीफ तो होगी लेकिन एक दिन के लिए कार तुम मुझे दे सकते हो?”

“क्यों?”

“मुझे ज़रा रीवाँ तक बहुत जरूरी काम से जाना है, वहाँ कुछ लोगों से मिलना है, कल दोपहर तक मैं चला आऊँगा।”

“इसके मतलब मेरे पास नहीं रहोगे एक दिन भी?”

“नहीं, इन्हें छोड़ जाऊँगा। लौटकर दिन-भर रहूँगा।”

“इन्हें छोड़ जाओगे? नहीं भाई, तुम जानते हो कि आजकल घर में कोई नहीं है।”

चन्दर ने कुछ घबराकर कहा।

“तो क्या हुआ, तुम तो हो!” कैलाश बोला और चन्दर के चेहरे की घबराहट देखकर हँसकर बोला, “अरे यार, अब तुम पर इतना अविश्वास नहीं है। अविश्वास करना होता तो ब्याह के पहले ही कर लेते।”

चन्दर मुसकरा उठा, कैलाश ने चन्दर के कन्धे पर हाथ रखकर धीमे से कहा ताकि सुधा न सुन पाये—“वैसे चाहे मुझे कुछ भी असन्तोष क्यों न हो, लेकिन इनका चरित्र तो सोने का है, यह मैं खूब परख चुका हूँ। इनका ऐसा चरित्र बनाने के लिए तो मैं तुम्हें बधाई दूँगा, चन्दर! और फिर आज के युग में!”

चन्दर ने कुछ जवाब नहीं दिया।

कार पोर्टिको में लगी। सुधा, कैलाश, चन्दर उतरे। माली और नौकर दौड़ आये, सुधा ने उन सबसे उनका हाल पूछा। अन्दर जाते ही महराजिन दौड़कर सुधा से लिपट गयी। सुधा को बहुत दुलार किया।

कैलाश मुँह-हाथ धो चुका था, नहाने चला गया। महराजिन चाय बनाने लगी। सुधा भी मुँह-हाथ धोने और नहाने चली गयी। कैलाश तौलिया लपेटे नहाकर आया और बैठ गया। बोला, “आज और कल की छुट्टी ले लो, चन्दर! इनकी तबीयत ठीक नहीं है और मुझे जाना जरूरी है!”

“अच्छा, लेकिन आज तो जाकर हाजिरी देना जरूरी होगा। फिर लौट आऊँगा!” महराजिन चाय और नाश्ता ले आयी। कैलाश ने नाश्ता लौटा दिया तो महराजिन बोली, “वाह, दामाद हुइके अकेली चाय पीबो भइया, अबहिन डॉक्टर साहब सुनिहैं तो का कहिहैं।”

“नहीं माँजी, मेरा पेट ठीक नहीं है। दो दिन के जागरण से आ रहा हूँ। फिर लौटकर खाऊँगा। लो चन्दर, चाय पियो।”

“सुधा को आने दो!” चन्दर बोला।

“वह पूजा-पाठ करके खाती हैं।”

“पूजा-पाठ!” चन्दर दंग रह गया, “सुधा पूजा-पाठ करने लगी?”

“हाँ भाई, तभी तो हमारी माताजी अपनी बहू पर मरती हैं। असल में वह पूजा-पाठ करती थीं। शुरुआत की इन्होंने पूजा के बरतन धोने से और अब तो उनसे भी ज्यादा पक्की पुजारिन बन गयी हैं।” कैलाश ने इधर-उधर देखा और बोला, “यार, यह मत समझना मैं सुधा की शिकायत कर रहा हूँ, लेकिन तुम लोगों ने मुझे ठीक नहीं चुना।”

“क्यों?” चन्दर कैलाश के व्यवहार पर मुग्ध था।

“इन जैसी लड़कियों के लिए तुम कोई कवि या कलाकार या भावुक लड़का ढूँढ़ते तो ठीक था। मेरे जैसा व्यावहारिक और नीरस राजनीतिक इनके उपयुक्त नहीं है। घर भर इनसे बेहद खुश है। जब से ये गयी हैं, माँ और शंकर भइया दोनों ने मुझे नालायक करार दे दिया है। इन्हीं से पूछकर सब करते हैं। लेकिन मैंने जो सोच रखा था, वह मुझे नहीं मिल पाया।”

“क्यों, क्या बात है?” चन्दर ने पूछा, “गलती बताओ तो हम इन्हें समझाएँ।”

“नहीं, देखो गलत मत समझो। मैं यह नहीं कहता कि इनकी गलती है। यह तो गलत चुनाव की बात है।” कैलाश बोला, “न इसमें मेरा कसूर, न इनका! मैं चाहता था कोई लड़की जो मेरे साथ राजनीति का काम करती, मेरी सबलता और दुर्बलता दोनों की संगिनी होती। इसीलिए इतनी पढ़ी-लिखी लड़की से शादी की। लेकिन इन्हें धर्म और साहित्य में जितनी रुचि है, उतनी राजनीति से नहीं। इसलिए मेरे व्यक्तित्व को ग्रहण भी नहीं कर पायीं। वैसे मेरी शारीरिक प्यास को इन्होंने चाहे समर्पण किया, वह भी एक बेमनी से, उससे तन की प्यास भले ही बुझ जाती हो कपूर, लेकिन मन तो प्यासा ही रहता है...बुरा न मानना। मैं बहुत स्पष्ट बातें करता हूँ। तुमसे छिपाना क्या?...और स्वास्थ्य के मामले में ये इतनी लापरवाह हैं कि मैं बहुत दुःखी रहता हूँ।” इतने में सुधा नहाकर आती हुई दिख पड़ी। कैलाश चुप हो गया। सुधा की ओर देखकर बोला, “मेरी अटैची भी ठीक कर दो। मैं अभी चला जाऊँ वरना दोपहर में तपना होगा।” सुधा चली गयी। सुधा के जाते ही कैलाश बोला, “भरसक मैं इन्हें दुःखी नहीं होने देता, हाँ, अक्सर ये दुःखी हो जाती हैं; लेकिन मैं क्या करूँ, यह मेरी मजबूरी है, वैसे मैं इन्हें भरसक सुखी रखने का प्रयास करता हूँ...और ये भी जायज-नाजायज हर इच्छा के सामने झुक जाती हैं, लेकिन इनके दिल में मेरे लिए कोई जगह नहीं है, वह जो एक पत्नी के मन में होती है। लेकिन खैर, जिन्दगी चलती जा रही है। अब तो जैसे हो निभाना ही है!”

इतने में सुधा आयी और बोली, “देखिए, अटैची सँवार दी है, आप भी देख लीजिए...” कैलाश उठकर चला गया। चन्दर बैठा-बैठा सोचने लगा—कैलाश कितना

अच्छा है, कितना साफ और स्वच्छ दिल का है! लेकिन सुधा ने अपने को किस तरह मिटा डाला...

इतने में सुधा आयी और चन्दर से बोली, "चन्दर! चलो, वो बुला रहे हैं!"

चन्दर चुपचाप उठा और अन्दर गया। कैलाश ने तब तक यात्रा के कपड़े पहन लिये थे। देखते ही बोला, "अच्छा चन्दर, मैं चलता हूँ। कल शाम तक आ जाने की कोशिश करूँगा। हाँ देखो, ज्यादा घुमाना मत। इनकी सखी को यहाँ बुलवा लो तो अच्छा।" फिर बाहर निकलता हुआ बोला, "इनकी जिद थी आने की, वरना इनकी हालत आने लायक नहीं थी। माताजी से मैं कह आया हूँ कि लखनऊ मेडिकल कॉलेज ले जा रहा हूँ।"

कैलाश कार पर बैठ गया। फिर बोला, "देखा चन्दर, दवा इन्हें दे देना याद से, वहीं रखी है।" कार स्टार्ट हो गयी।

चन्दर लौटा। बरामदे में सुधा खड़ी थी। चुपचाप बुझी हुई-सी। चन्दर ने उसकी ओर देखा, उसने चन्दर की ओर देखा, फिर दोनों ने निगाहें झुका लीं। सुधा वहीं खड़ी रही। चन्दर ड्राइंग-रूम में जाकर किताबें वगैरह उठा लाया और कॉलेज जाने के लिए निकला। सुधा अब भी बरामदे में खड़ी थी। गुमसुम... चन्दर कुछ कहना चाहता था... लेकिन क्या? कुछ था, जो न जाने कब से संचित होता आ रहा था, जो वह व्यक्त करना चाहता था, लेकिन सुधा कैसी हो गयी है! यह वह सुधा तो नहीं जिसके सामने वह अपने को सदा व्यक्त कर देता था। कभी संकोच नहीं करता था, लेकिन यह सुधा कैसी है अपने में सिमटी-सकुची, अपने में बँधी-बँधायी, अपने में इतनी छिपी हुई कि लगता था दुनिया के प्रति इसमें कहीं कोई खुलाव ही नहीं। चन्दर के मन में जाने कितनी आवाजें तड़प उठीं लेकिन... कुछ नहीं बोल पाया। वह बरामदे में ठिठक गया, निरुद्देश्य। वहाँ अपनी किताबें खोलकर देखने लगा, जैसे वह याद करना चाहता था कि कहीं भूल तो नहीं आया है कुछ लेकिन उसके अन्तर्मन में केवल एक ही बात थी। सुधा कुछ तो बोले। यह इतना गहरा, इतनी घुटनवाला मौन, यह तो जैसे चन्दर के प्राणों पर घुटन की तरह बैठता जा रहा था। सुधा... निर्वात निवास में दीपशिखा-सी अचल, निस्पन्द, धमे हुए तूफान की तरह मौन। चन्दर ने अन्त में नोट्स लिए, घड़ी देखी और चल दिया। जब वह सीढ़ी तक पहुँचा तो सहसा सुधा की छायामूर्ति में हरकत हुई। सुधा ने पाँव के अँगूठे से फर्श पर एक लकीर खींचते हुए नीचे निगाह झुकाये हुए कहा, "कितनी देर में आओगे?" चन्दर रुक गया। जैसे चन्दर को सितारों का राज मिल गया हो। सुधा भला बोली तो। लेकिन, फिर भी अपने मन का उल्लास उसने जाहिर नहीं होने दिया, बोला, "कम-से-कम दो घंटे तो लगेंगे ही।"

सुधा कुछ नहीं बोली, चुपचाप रह गयी। चन्दर ने दो क्षण प्रतीक्षा की कि सुधा अब कुछ बोले लेकिन सुधा फिर भी चुप। चन्दर फिर मुड़ा। क्षण-भर बाद सुधा ने पूछा, “चन्दर, और जल्दी नहीं लौट सकते?”

जल्दी! सुधा अगर कहे तो चन्दर जाये भी न, चाहे उसे इस्तीफा देना पड़े। क्या सुधा भूल गयी कि चन्दर के व्यक्तित्व पर अगर किसी का शासन है तो सुधा का! वह जो अपनी जिद से, उछलकर, लड़कर, रूठकर चन्दर से हमेशा मनचाहा काम करवाती रही है...आज वह इतनी दीनता से, इतनी विनय से, इतने अन्तर और इतनी दूरी से क्यों कह रही है कि जल्दी नहीं लौट सकते? क्यों नहीं वह पहले की तरह दौड़कर चन्दर का कॉलर पकड़ लेती और मचलकर कहती, ‘ए, अगर जल्दी नहीं लौटते तो...’ लेकिन अब तो सुधा बरामदे में खड़ी होकर गम्भीर-सी, डूबती हुई-सी आवाज में पूछ रही है—जल्दी नहीं लौट सकते! चन्दर का मन टूट गया। चन्दर की उमंग चट्टान से टकराकर बिखर गयी...उसने बहुत भारी-सी आवाज में पूछा, “क्यों?”

“जल्दी लौट आते तो पूजा करके तुम्हारे साथ नाश्ता कर लेते! लेकिन अगर ज्यादा काम हो तो रहने दो, मेरी वजह से हरज मत करना!” उसने उसे ठंडे, शिष्ट और भावहीन स्वर में कहा।

हाय सुधा! अगर तुम जानती होती कि महीनों उद्भ्रान्त चन्दर का टूटा और प्यासा मन तुमसे पुराने स्नेह की एक बूँद के लिए तरस उठा है तो भी क्या तुम इसी दूरी से बातें करती! काश कि तुम समझ पाती कि चन्दर ने अगर तुमसे कुछ दूरी भी निभायी है तो उससे खुद चन्दर कितना बिखर गया है। चन्दर ने अपना देवत्व खो दिया है, अपना सुख खो दिया है, अपने को बर्बाद कर दिया है और फिर भी चन्दर के बाहर से शान्त और सुगठित दिखने वाले हृदय के अन्दर तुम्हारे प्यार की कितनी गहरी प्यास धधक रही है, उसके रोम-रोम में कितनी जहरीली तृष्णा की बिजलियाँ कौंध रही हैं, तुमसे अलग होने के बाद अतृप्ति का कितना बड़ा रास्ता उसने आग की लपटों में झुलसते हुए बिताया है। अगर तुम इसे समझ लेती तो तुम चन्दर को एक बार दुलारकर उसके जलते हुए प्राणों पर अमृत की चाँदनी बिखेरने के लिए व्यग्र हो उठती; लेकिन सुधा, तुमने अपने बाह्य विद्रोह को ही समझा, तुमने उस गम्भीर प्यार को समझा ही नहीं जो इस बाहरी विद्रोह, इस बाहरी विध्वंस के मूल में पर्यस्विनी की पावन धारा की तरह बहता जा रहा है। सुधा, अगर तुम एक क्षण के लिए इसे समझ लो...एक क्षण-भर के लिए चन्दर को पहले की तरह दुलार लो, बहला लो, रूठ लो, मना लो तो सुधा चन्दर की जलती हुई आत्मा, नरक चिताओं में फिर से अपना गौरव पा ले, फिर से अपनी खोयी हुई पवित्रता जीत ले, फिर से अपना विस्मृत देवत्व लौटा ले...लेकिन सुधा, तुम

बरामदे में चुपचाप खड़ी इस तरह की बातें कर रही हो जैसे चन्दर कोई अपरिचित हो। सुधा, यह क्या हो गया है तुम्हें? चन्दर, बिनती, पम्मी सभी की जिन्दगी में जो भयंकर तूफान आ गया है, जिसने सभी को झकझोर कर थका डाला है, इसका समाधान सिर्फ तुम्हारे प्यार में था, सिर्फ तुम्हारी आत्मा में था, लेकिन अगर तुमने इनके चरित्रों का अन्तर्निहित सत्य न देखकर बाहरी विध्वंस से ही अपना आगे का व्यवहार निश्चित कर लिया तो कौन इन्हें इस चक्रवात से खींच निकालेगा! क्या ये अभागे इसी चक्रवात में फँसकर चूर हो जायेंगे... सुधा...

लेकिन सुधा और कुछ नहीं बोली। चन्दर चल दिया। जाकर लगा जैसे कॉलेज के परीक्षा भवन में जाना भी भारी मालूम दे रहा था। वह जल्दी ही भाग आया।

हालाँकि सुधा के व्यवहार ने उसका मन जैसे तोड़-सा दिया था, फिर भी जाने क्यों वह अब आज सुधा को एक प्रकाशवृत्त बनकर लपेट लेना चाहता था।

जब चन्दर लौट आया तो उसने देखा—सुधा तो उसी के कमरे में है। उसने उसके कमरे के एक कोने में दरी हटा दी है, वहाँ पानी छिड़क दिया और एक कुश के आसन पर सामने चौकी पर कोई पोथी धरे बैठी है। चौकी पर एक श्वेत वस्त्र बिछाकर धूपदानी रख दी है जिसमें धूप सुलग रही है। लॉन से शायद कुछ फूल तोड़ लायी थी जो धूपदानी के पास रखे हुए थे। बगल में एक रुद्राक्ष की माला रखी थी। एक शुद्ध श्वेत रेशम की धोती और केवल एक चोला पहने हुए पल्ले से बाँहों तक ढँके हुए वह एकाग्र मनोयोग से ग्रन्थ का पारायण कर रही थी। धूपदानी से धूम्र-रेखाएँ मचलती हुई, लहराती हुई, उसके कपोलों पर झूलती हुई सूखी-रूखी अलकों से उलझ रही थीं। उसने नहाकर केश बाँधे नहीं थे... चन्दर ने जूते बाहर ही उतार दिये और चुपचाप पलंग पर बैठकर सुधा को देखने लगा। सुधा ने सिर्फ एक बार बहुत शान्त, बहुत गहरी आकाश-जैसी स्वच्छ निगाहों से चन्दर को देखा और फिर पढ़ने लगी। सुधा के चारों ओर एक विचित्र-सा वातावरण था, एक अपार्थिव स्वर्गिक ज्योति के रेशों से बुना हुआ झीना प्रकाश उस पर छाया हुआ था। गले में पड़ा हुआ आँचल, पीठ पर बिखरे हुए सुनहले बाल, अपना सब कुछ खोकर विरक्ति में खिन्न सुहाग पर छाये हुए वैधव्य की तरह सुधा लग रही थी। माँग सूनी थी, माथे पर रोली का एक बड़ा-सा टीका था और चेहरे पर स्वर्ग के मुरझाये हुए फूलों की घुलती हुई उदासी, जैसे किसी ने चाँदनी पर हरसिंगार के पीले फूल छीटि दे दिये हों।

थोड़ी देर तक सुधा स्पष्ट स्वरों में पढ़ती रही। उसके बाद उसने पोथी बन्द कर रख दी। उसके बाद आँख बन्द कर जाने किस अज्ञात देवता को हाथ जोड़कर नमस्कार किया... फिर उठ खड़ी हुई और फर्श पर चन्दर के पास बैठ गयी। आँचल कमर में खोंस लिया और बिना सिर उठाये बोली, “चलो, नाश्ता कर लो!”

“यहीं ले आओ!” चन्दर बोला। सुधा उठी और नाश्ता ले आयी। चन्दर ने उठाकर एक टुकड़ा मुँह में रख लिया। लेकिन जब सुधा उसी तरह फर्श पर चुपचाप बैठी रही तो चन्दर ने कहा, “तुम भी खाओ!”

“मैं!” वह एक फीकी हँसी हँसकर बोली, “मैं खा लूँ तो अभी कै हो जाये। मैं सिवा नीबू के शरबत और खिचड़ी के अब कुछ नहीं खाती। और वह भी एक वक्त!”

“क्यों?”

“असल में पहले मैंने एक व्रत किया, पन्द्रह दिन तक केवल प्रातःकाल खाने का, तब से कुछ ऐसा हो गया कि शाम को खाते ही मन बिगड़ जाता है। इधर और कई रोग हो गये हैं?”

चन्दर का मन रो आया। सुधा, तुम चुपचाप इस तरह अपने को मिटाती रही! मान लिया चन्दर ने एक खत में तुम्हें लिख ही दिया था कि अब पत्र-व्यवहार बन्द कर दो! लेकिन क्या अगर तुम पत्र भेजतीं तो चन्दर की हिम्मत थी कि वह उत्तर न देता! अगर तुम समझ पातीं कि चन्दर के मन में कितना दुःख है!

चन्दर चाहता था कि सुधा की गोद में अपने मन की सभी बातें बिखेर दे... लेकिन सुधा कहे, कुछ शिकायत करे तो चन्दर अपनी सफाई दे... लेकिन सुधा तो है कि शिकायत ही नहीं करती, सफाई देने का मौका ही नहीं देती... यह देवत्व की मूर्ति-सी पथरीली सुधा! यह चन्दर की सुधा तो नहीं! चन्दर का मन बहुत भर आया। उसके रूँधे गले से पूछा, “सुधा, तुम बहुत बदल गयी हो। खैर और तो जो कुछ है उसने लिए अब मैं क्या कहूँ, लेकिन अपनी तन्दुरुस्ती बिगाड़कर क्यों तुम मुझे दुःख दे रही हो! अब यों भी मेरी जिन्दगी में क्या रहा है! लेकिन एक ही सन्तोष था कि तुम सुखी हो। लेकिन तुमने मुझसे वह सहारा छीन लिया... पूजा किसकी करती हो?”

“पूजा कहाँ, पाठ करती हूँ, चन्दर! गीता का और भागवत का, कभी-कभी सूर-सागर का! पूजा अब भला किसकी करूँगी? मुझ जैसी अभागिनी की पूजा भला स्वीकार कौन करेगा?”

“तब यह एक वक्त का भोजन क्यों?”

“यह तो प्रायश्चित्त है, चन्दर!” सुधा ने एक गहरी साँस लेकर कहा।

“प्रायश्चित्त...?” चन्दर ने अचरज से कहा।

“हाँ, प्रायश्चित्त...” सुधा ने अपने पाँव के बिछियों को धोती के छोर से रगड़ते हुए कहा, “हिन्दू-गृह तो एक ऐसा जेल होता है जहाँ कैदी को उपवास करके प्राण छोड़ने की भी इजाजत नहीं रहती, अगर धर्म का बहाना न हो! धर्म के बहाने उपवास करके कुछ सुख मिल जाता है।”

एक क्षण आता है कि आदमी प्यार से विद्रोह कर चुका है, अपने जीवन की प्रेरणा-मूर्ति की गोद से बहुत दिन तक निर्वासित रह चुका है, उसका मन पागल हो उठता है फिर से प्यार करने को, बेहद प्यार करने को, अपने मन का दुलार फूलों की तरह बिखरा देने को। आज विद्रोह का तूफान उतर जाने के बाद अपनी उजड़ी हुई जिन्दगी में बीमार सुधा को पाकर चन्दर का मन तड़प उठा। सुधा की पीठ पर लहराती हुई सूखी अलकें हाथ में ले लीं। उन्हें गूँथने का असफल प्रयास करते हुए बोला—

“सुधा, यह तो सच है कि मैंने तुम्हारे मन को बहुत दुखाया है, लेकिन तुम तो हमारी हर बात को, हमारे हर क्रोध को क्षमा करती रही हो, इस बात का तुम इतना बुरा मान गयी?”

“किस बात का, चन्दर!” सुधा ने चन्दर की ओर देखकर कहा, “मैं किस बात का बुरा मान गयी!”

“किस बात का प्रायश्चित्त कर रही हो तुम, इस तरह अपने को मिटाकर!”

“प्रायश्चित्त तो मैं अपनी दुर्बलता का कर रही हूँ, चन्दर!”

“दुर्बलता?” चन्दर ने सुधा की अलकों को घटाओं की तरह छिटकाकर कहा।

“दुर्बलता—चन्दर! तुम्हें ध्यान होगा, एक दिन हम लोगों ने निश्चय किया था कि हमारे प्यार की कसौटी यह रहेगी चन्दर, दूर रहकर भी हम लोग ऊँचे उठेंगे, पवित्र रहेंगे। दूर हो जाने के बाद चन्दर, तुम्हारा प्यार तो मुझमें एक दृढ़ आत्मा और विश्वास भरता रहा, उसी के सहारे मैं अपने जीवन के तूफानों को पार कर ले गयी; लेकिन पता नहीं मेरे प्यार में कौन-सी दुर्बलता रही कि तुम उसे ग्रहण नहीं कर पाये... मैं तुमसे कुछ नहीं कहती। मगर अपने मन में कितनी कुंठित हूँ कि कह नहीं सकती। पता नहीं दूसरा जन्म होता है या नहीं; लेकिन इस जन्म में तुम्हें पाकर तुम्हारे चरणों पर अपने को न चढ़ा पायी। तुम्हें अपने मन की पूजा में यकीन न दिला पायी, इससे बढ़कर और दुर्भाग्य क्या होगा? मैं अपने व्यक्तित्व को कितना गर्हित, कितना छिछला समझने लगी हूँ, चन्दर!”

चन्दर ने नाश्ता खिसका दिया। अपनी आँख में झलकते हुए आँसू को छिपाते हुए चुपचाप बैठ गया।

“नाश्ता कर लो, चन्दर! इस तरह तुम्हें अपने पास बिठाकर खिलाने का सुख अब

कहाँ नसीब होगा! लो।" और सुधा ने अपने हाथ से उसे एक नमकीन सेव खिला दिया। चन्दर के भरे आँसू सुधा के हाथों पर चू पड़े।

"छिः, यह क्या, चन्दर!"

"कुछ नहीं..." चन्दर ने आँसू पोंछ डाले।

इतने में महाराजिन आयी और सुधा से बोली, "बिटिया रानी! लेव ई नानखटाई हम कल्है से बनाय के रख दिया रहा कि तोके खिलाइबे!"

"अच्छा! हम भी महाराजिन, इतने दिन से तुम्हारे हाथ का खाने के लिए तरस गये, तुम चलो हमारे साथ!"

"हियाँ चन्दर भइया के कौन देखी? अब बिटिया इनहूँ के ब्याह कर देव, तो हम चली तोहरे साथ!"

सुधा हँस पड़ी, चन्दर चुपचाप बैठा रहा। महाराजिन खिचड़ी डालने चली गयी। सुधा ने चुपचाप नानखटाई की तश्तरी उठाकर एक ओर रख दी—चन्दर चुप, अब क्या बात करे! पहले वह दोनों घंटों क्या बात करते थे! उसे बड़ा ताज्जुब हुआ। इस वक्त कोई बात ही नहीं सूझती है। पहले जाने कितना वक्त गुजर जाता था, दोनों की बातों का खात्मा ही नहीं होता था। सुधा भी चुप थी। थोड़ी देर बाद चन्दर बोला, "सुधी, तुम सचमुच पूजा-पाठ में विश्वास रखती हो..."

"क्यों, करती तो हूँ, चन्दर! हाँ, मूर्ति जरूर नहीं पूजती, पर कृष्ण को जरूर पूजती हूँ। अब सभी सहारे टूट गये, तुमने भी मुझे छोड़ दिया, तब मुझे गीता और रामायण में बहुत सन्तोष मिला। पहले मैं खुद ताज्जुब करती थी कि औरतें इतना पूजा-पाठ क्यों करती हैं, फिर मैंने सोचा—हिन्दू नारी इतनी असहाय होती है, उसे पति से, पुत्र से, सभी से इतना लांछन, अपमान और तिरस्कार मिलता है कि पूजा-पाठ न हो तो पशु बन जाये, पूजा-पाठ ही ने हिन्दू नारी का चरित्र अभी तक इतना ऊँचा रखा है।"

"मैं तो समझता हूँ यह अपने को भुलावा देना है।"

"मानती हूँ चन्दर, लेकिन अगर कोई हिन्दू धर्म की इन किताबों को ध्यान से पढ़े तब वह जाने, क्या है इनमें! जाने कितनी ताकत देती हैं ये! अभी तक जिन्दगी में मैंने यह सोचा है कि पुरुष हो या नारी, सभी के जीवन का एकमात्र सम्बल विश्वास है, और इन ग्रन्थों में सभी संशयों को मिटाकर विश्वास का इतना गहन उपदेश है कि मन पुलक उठता है।...मैं तुमसे कुछ नहीं छिपाती। चन्दर, जब बिनती के ब्याह में तुमने मेरा पत्र लौटा दिया तो मैं तड़प उठी। एक अविश्वास मेरी नस-नस में गुँथ गया। मैंने समझ लिया कि तुम्हारी सारी बातें झूठी थीं। एक जाने कैसी आग मुझे हरदम झुलसाती रहती थी! मेरा स्वभाव बहुत बिगड़ गया था। मुझे हरेक से नफरत हो गयी थी। हरेक पर

झल्ला उठती थी... किसी बात में मुझे चैन नहीं मिलता था। धीरे-धीरे मैंने इन किताबों को पढ़ना शुरू किया। मुझे लगने लगा कि शान्ति धीरे-धीरे मेरी आत्मा पर उतर रही है। मुझे लगा कि यह सभी ग्रन्थ पुकार-पुकारकर कह रहे हैं—‘संशयात्मा विनश्यति!’ धीरे-धीरे मैंने इन बातों को अपने जीवन पर घटाना शुरू किया, तो मैंने देखा कि सारी भक्ति की किताबें और उनका दर्शन बड़ा मनोहर रूपक है, चन्दर! कृष्ण प्यार के देवता हैं। वंशी की ध्वनि विश्वास की पुकार है। धीरे-धीरे तुम्हारे प्रति मेरे मन में जगा हुआ अविश्वास मिट गया, मैंने कहा, तुम मुझसे अलग ही कहाँ हो, मैं तो तुम्हारी आत्मा का एक टुकड़ा हूँ जो एक जनम के लिए अलग हो गयी। लेकिन हमेशा तुम्हारे चारों ओर चन्द्रमा की तरह चक्कर लगाती रहूँगी, जिस दिन मैंने पढ़ा—

‘सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।

अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥’

तो मुझे लगा कि तुम्हारा खोया हुआ प्यार मुझे पुकारकर कह रहा है—मेरी शरण में चले आओ, और सिवा तुम्हारे प्यार के मेरा भगवान और है ही क्या ...उसके बाद से चन्दर, मेरे मन में विश्वास और प्रेम झलक आया, अपने जीवन की परिधि में आने वाले हर व्यक्ति के लिए। सभी मुझे बहुत चाहने लगे...लेकिन चन्दर, जब बिनती यहाँ से दिल्ली जाते वक्त मेरे साथ गयी और उसने सब हाल बताया तो मुझे कितना दुःख हुआ। कितनी ग्लानि हुई। तुम्हारे ऊपर नहीं, अपने ऊपर।”

बातें भावनात्मक स्तर से उठकर बौद्धिक स्तर पर आ चुकी थीं। चन्दर फौरन बोला, “सुधा, ग्लानि की तो कोई बात नहीं, कम-से-कम मैंने जो कुछ किया है उस पर मुझे ज़रा-सी भी शर्म नहीं!” चन्दर के स्वर में फिर एक बार गर्व और कड़वाहट-सी आ गयी थी—“मैंने जो कुछ किया है उसे मैं पाप नहीं मानता। तुम्हारे भगवान ने तुम्हें जो कुछ रास्ता दिखलाया, वह तुमने किया। मेरे भगवान ने जो रास्ता मुझे दिखलाया, वह मैंने किया। तुम जानती ही हो मेरी जिन्दगी की पवित्रता तुम थीं, तुम्हारी भोली निष्पाप साँसें मेरे सभी गुनाह, मेरी सभी कमजोरियाँ सुलाती रही हैं। जिस दिन तुम मेरी जिन्दगी से चली गयीं, कुछ दिन तक मैंने अपने को सँभाला। इसके बाद मेरी आत्मा का कण-कण द्रोह कर उठा। मैंने कहा, स्वर्ग के मालिक साफ-साफ सुनो। तुमने मेरी जिन्दगी की पवित्रता को छीन लिया है, मैं तुम्हारे स्वर्ग में वासना की आग धधकाकर उसे नरक से बदतर बना दूँगा। और मैंने होंठों के किनारे चुम्बन की लपटें सुलगानी शुरू कर दीं...धीरे-धीरे महाश्मशान के सन्नाटे में करोड़ों वासना की लपटें जहरीले सौंपों की तरह फुँफकारने लगीं। मेरे मन को इसमें बहुत सन्तोष मिला, बहुत शान्ति मिली। यहाँ

तक कि बिनती के लिए मैं अपने मन की सारी कटुता भूल गया। मैं कैसे कह दूँ कि यह सब गुनाह था। सुधा, अगर ठीक से देखो, गम्भीरता से समझो तो जो कुछ तुम्हारे लिए मेरे मन में था, उसी की प्रतिक्रिया वह है जो मेरे मन में पम्मी के लिए है। तुम्हारा दुलार और पम्मी की वासना दोनों एक सिक्के के दो पहलू हैं। अपने पहलू को सही और दूसरे पहलू को गलत क्यों कहती हो? देवता की आरती में जलता हुआ दीपक पवित्र है और उससे निकला हुआ धुआँ अपवित्र! दीप-शिखा नैतिक है और धूम-रेखा अनैतिक? ग्लानि किस बात की, सुधा?" चन्दर ने बहुत आवेश में कहा।

"छिः, चन्दर! तुम मुझे समझे नहीं! मैं नैतिक-अनैतिक की बात ही नहीं करती। मेरे भगवान ने, मेरे प्यार ने मुझे अब उस दुनिया में पहुँचा दिया है जो नैतिक-अनैतिक से उठकर है। तुमने अपने भगवान से विद्रोह किया, लेकिन उन्होंने तुम्हारी बात पर कोई फैसला भी तो दिया होता। वे इतने दयालु हैं कि कभी मानव के कार्यों पर फैसला ही नहीं देते। दंड तो दूर की बात, वे तो केवल आदमी को समझाकर उसकी कमजोरियाँ समझकर उसे क्षमा करने और उसे प्यार करने की बात कहते हैं, चन्दर! वहाँ नैतिकता-अनैतिकता का प्रश्न ही नहीं।"

"तब? यह ग्लानि किस बात की तुम्हें!" चन्दर ने पूछा।

"ग्लानि तो मुझे अपने पर थी, चन्दर! रहा तुम्हारा पम्मी से सम्बन्ध तो मैं बिनती की तरह नहीं सोचती, इतना विश्वास रखो। मेरी पाप और पुण्य की तराजू ही दूसरी है। फिर कम-से-कम अब इतना देख-सुनकर मैं यह नहीं मानती कि शरीर की प्यास ही पाप है! नहीं चन्दर, शरीर की प्यास भी उतनी ही पवित्र और स्वाभाविक है जितनी आत्मा की पूजा। आत्मा की पूजा और शरीर की प्यास दोनों अभिन्न हैं। आत्मा की अभिव्यक्ति शरीर से है, शरीर का संस्कार, शरीर का सन्तुलन आत्मा से है। जो आत्मा और शरीर को अलग कर देता है, वही मन के भयंकर तूफानों में उलझकर चूर-चूर हो जाता है। चन्दर, मैं तुम्हारी आत्मा थी। तुम मेरे शरीर थे। पता नहीं कैसे हम लोग अलग हो गये! तुम्हारे बिना मैं केवल सूक्ष्म आत्मा रह गयी। शरीर की प्यास, शरीर की रंगीनियाँ मेरे लिए अपरिचित हो गयीं। पति को शरीर देकर भी मैं सन्तोष न दे पायी...और मेरे बिना तुम केवल शरीर रह गये। शरीर में डूब गये...पाप का जितना हिस्सा तुम्हारा उतना ही मेरा...पाप की वैतरणी के इस किनारे जब तक तुम तड़पोगे, तभी तक मैं भी तड़पूँगी...दोनों में से किसी को भी चैन नहीं और कभी चैन नहीं मिलेगा..."

"लेकिन फिर..."

"हटाओ इन सब बातों को, चन्दर! तुमने व्यर्थ यह बात उठायी। मैं अब बात करना भूलती जा रही हूँ। मैं तो आयी थी तुम्हें देखकर कुछ मन का ताप मिटाने। उठो,

खाना खाएँ!" सुधा बोली।

"नहीं, मैं चाहता हूँ, बातें सुलझ जाएँ, सुधा!" चन्दर ने सुधा के हाथ पर अपना सिर रखकर कहा, "मेरी तकलीफ अब बेहद बढ़ती जा रही है। मैं पागल न हो जाऊँ।"

"छिः, ऐसी बात नहीं सोचते। उठो!" चन्दर को उठाकर सुधा बोली। दोनों ने खाना खाया। महाराजिन बड़े दुलार से परसती रहीं और सुधा से बातें करती रहीं। खाना खाकर चन्दर लेट गया और सोचने लगा, अब क्या सचमुच उसके और सुधा के बीच में कोई इतना भयंकर अन्तर आ गया है कि दोनों पहले जैसे नहीं हो सकते?

लगभग चार बजे वह जागा तो उसने देखा कि उसके पाँवों के पास सिर रखकर सुधा सो रही है। पंखे की हवा वहाँ तक नहीं पहुँचती। वह पसीने से तर-बतर हो रही है। चन्दर उठा, उसे नींद में ऐसा लगा कि जैसे इधर कुछ हुआ ही नहीं है। सुधा वही सुधा है, चन्दर वही चन्दर है। उसने सुधा के पल्ले से सुधा के माथे और गले का पसीना पोंछ दिया और हाथ बढ़ाकर पंखा उसकी ओर घुमा दिया। सुधा ने आँखें खोलीं, एक अजीब-सी निगाह से चन्दर की ओर देखा और चन्दर के पाँव को खींचकर वक्ष से लगाकर फिर आँख बन्द करके लेट गयी। चन्दर ने अपना एक हाथ सुधा के माथे पर रख लिया और वह चुपचाप बैठा सोचने लगा, आज से लगभग साल-भर पहले की बात, जब उसने पहले-पहल सुधा को कैलाश का चित्र दिखाया था, और सुधा रो-धोकर उसके पाँवों में इसी तरह मुँह छिपाकर सो गयी थी...और आज...सुधा साल-भर में कहाँ से कहाँ जा पहुँची है! चन्दर कहाँ से कहाँ पहुँच गया है! काश कि कोई उनकी जिन्दगी की स्लेट से इस वर्ष-भर में खींची हुए मानसिक रेखाओं को मिटा सके तो कितने सुखी हो जाएँ दोनों! चन्दर ने सुधा को हिलाया और बोला—

"सुधा, सो रही हो?"

"नहीं।"

"उठो।"

"नहीं चन्दर, पड़ी रहने दो। तुम्हारे चरणों में सब कुछ भूलकर एक क्षण के लिए भी सो सकूँगी, मुझे इसका विश्वास नहीं था। सब कुछ छीन लिया है तुमने, एक क्षण की आत्म-प्रवंचना क्यों छीनते हो?" सुधा ने उसी तरह पड़े हुए जवाब दिया।

"अरी, उठ पगली!" चन्दर के मन में जाने कहाँ मरा पड़ा हुआ उल्लास फिर से जिन्दा हो उठा था। उसने सुधा की बाँह में जोर से चुटकी काटते हुए कहा, "उठती है या नहीं, आलसी कहीं की!"

सुधा उठकर बैठ गयी। क्षण-भर चन्दर की ओर पथरायी हुई निगाह से देखती रही और बोली, "चन्दर, मैं जाग रही हूँ। तुम्हीं ने उठाया है मुझे...चन्दर। कहीं सपना तो नहीं कि फिर टूट जाए!" और सुधा सिसक-सिसक कर रो पड़ी। चन्दर की आँखों में

आँसू आ गये। थोड़ी देर बाद वह बोला, “सुधा, कोई जादूगर अगर हम लोगों के मन से यह काँटा निकाल देता तो मैं कितना सुखी होता! लेकिन सुधा, अब मैं तुम्हें दुःखी नहीं करूँगा।”

“यह तो तुमने पहले भी कहा था, चन्दर! लेकिन इधर जाने कैसे हो गये। लगता है तुम्हारे चरित्र में कहीं स्थायित्व नहीं... इसी का तो मुझे दुःख है, चन्दर!”

“अब रहेगा, सुधा! तुम्हें खोकर, तुम्हारे प्यार को खोकर मैं देख चुका हूँ कि मैं आदमी नहीं रह पाता, जानवर बन जाता हूँ। सुधा, अगर तुम आज से महीनों पहले मिल जातीं तो जो जहर मेरे मन में घुट रहा है, वह तुम्हारे सामने व्यक्त करके मैं बिल्कुल निश्चिन्त हो जाता। अच्छा सुधा, यहाँ आओ। चुपचाप लेट जाओ, मैं तुमसे सब कुछ कह डालूँ, फिर सब भूल जाऊँ। बोलो, सुनोगी?”

सुधा चुपचाप लेट गयी और बोली, “चन्दर! या तो मत बताओ या फिर सभी स्पष्ट बता दो...”

“हाँ, बिल्कुल स्पष्ट सुधी; तुमसे कुछ छिपा सकता हूँ भला!” चन्दर ने हल्की-सी चपत मारकर कहा, “आज मन जैसे पागल हो रहा है तुम्हारे चरणों पर बिखर जाने के लिए... जादूगरनी कहीं की! देखो सुधा—पिछली दफे तुमने मुझे बहुत कुछ बताया था, कैलाश के बारे में!”

“हाँ।

“बस, उसके बाद से एक अजीब-सी अरुचि मेरे मन में तुम्हारे लिए होने लगी थी; मैं तुमसे कुछ छिपाऊँगा नहीं। तुम्हारे जाने के बाद बर्ती आया। उसने मुझसे कहा कि औरत केवल नयी संवेदना, नया स्वाद चाहती है और कुछ नहीं, अविवाहित लड़कियाँ विवाह, और विवाहित लड़कियाँ नये प्रेमी... बस यही उनका चरम लक्ष्य है। लड़कियाँ शरीर की प्यास के अलावा और कुछ नहीं चाहती... जैसे अराजकता के दिनों में किसी देश में कोई भी चालाक नेता शक्ति छीन लेता है, वैसे ही मानसिक शून्यता के क्षणों में बर्ती जैसे मेरा दार्शनिक गुरु हो गया। उसके बाद आयी पम्मी। उससे मैंने कहा कि क्या आवश्यक है कि पुरुष और नारी के सम्बन्धों में सेक्स हो ही? उसने कहा, ‘हाँ, और यदि नहीं है तो प्लेटानिक (आदर्शवादी) प्यार की प्रतिक्रिया सेक्स की ही प्यास में होती है।’ अब मैं तुम्हें अपने मन का चोर बतला दूँ। मैंने सोचा कि तुम भी अपने वैवाहिक जीवन में रम गयी हो। शरीर की प्यास ने तुम्हें अपने में डुबा दिया है और जो अरुचि तुम मेरे सामने व्यक्त करती हो वह केवल दिखावा है। इसलिए मन-ही-मन मुझे तुमसे चिढ़-सी हो गयी। पता नहीं क्यों यह संस्कार मुझमें दृढ़-सा हो गया और इसी के पीछे मैं तुम्हीं को नहीं, पम्मी को छोड़कर सभी लड़कियों से नफरत-सी करने लगा। बिनती

को भी मैंने बहुत दुःख दिया। ब्याह में जाने के पहले ही बहुत दुःखी होकर गयी। रही पम्मी की बात तो मैं उस पर इसलिए खुश था कि उसने बड़ी यथार्थ-सी बात कही थी। लेकिन उसने मुझसे कहा कि आदर्शवादी प्यार की प्रतिक्रिया शारीरिक प्यास में होती है। तुमको इसका अपराधी मानकर तुमसे तो नाराज हो गया लेकिन अन्दर-ही-अन्दर वह संस्कार मेरा व्यक्तित्व बदलने लगा। सुधा, पता नहीं, तुम्हारे जीवन में प्रतिक्रिया के रूप में शारीरिक प्यास जागी या नहीं पर मेरे मन के गुनाह तो तूफान की तरह लहरा उठे। लेकिन तुमसे एक बात नहीं छिपाऊँगा। वह यह कि ऐसे भी क्षण आये हैं जब पम्मी के समर्पण ने मेरे मन की सारी कटुता धो दी है...बोलो, तुम कुछ तो बोलो, सुधा!"

"तुम कहते चलो, चन्दर! मैं सुन रही हूँ।"

"हाँ...लेकिन उस दिन गेसू आयी। उसने मुझे फिर पुराने दिनों की याद दिला दी और फिर जैसे पम्मी के लिए आकर्षण उखड़-सा गया। अच्छा सुधा, एक बात बताओ। तुम यह मानती हो कि कभी-कभी एक व्यक्ति के माध्यम से दूसरे व्यक्ति की भावनाओं की अनुभूति होने लगती है?"

"क्या मतलब?"

"मेरा मतलब जैसे मुझे गेसू की बातों में उस दिन ऐसा लगा, जैसे तुम बोल रही हो। और दूसरी बात तुम्हें बताऊँ। तुम्हारे पीछे बिनती रही मेरे पास। सारे अँधेरे में वही एक रोशनी थी, बड़ी क्षीण, टिमटिमाती हुई, सारहीन-सी। बल्कि मुझे तो लगता था कि वह रोशन ही इसलिए थी कि उसमें रोशनी तुम्हारी थी। मैंने कुछ दिन बिनती को बहुत प्यार किया। मुझे ऐसा लगता था कि अभी तक तुम मेरे सामने थीं, अब तुम उसके माध्यम से आती हो। लगता था जैसे वह एक व्यक्तित्व नहीं है, तुम्हारे व्यक्तित्व का ही अंश है। उस लड़की में जिस अंश तक तुम थीं वह अंश बार-बार मेरे मन में रस उभार देता था। क्यों सुधा! मन की यह भी कैसी अजब-सी गति है!"

सुधा थोड़ी देर चुप रही, फिर बोली, "भागवत में एक जगह एक टीका में हमने पढ़ा था चन्दर कि जिसको भगवान बहुत प्यार करते हैं, उसमें उनकी अंशाभिव्यक्ति होती है। बहुत बड़ा वैज्ञानिक सत्य है यह! मैं बिनती को बहुत प्यार करती हूँ, चन्दर!"

"समझ गया मैं।" चन्दर बोला, "अब मैं समझा, मेरे मन में इतने गुनाह कहाँ से आये। तुमने मुझे बहुत प्यार किया और वही तुम्हारे व्यक्तित्व के गुनाह मेरे व्यक्तित्व में उतर आये।"

सुधा खिलखिलाकर हँस पड़ी। चन्दर के कन्धे पर हाथ रखकर बोली, "इसी तरह हँसते-बोलते रहते तो क्यों यह हाल होता? मनमौजी हो। जब चाहो खुश हो गये, जब चाहो नाराज हो गये!"

उसके बाद वह उठी और बाहर से एक तश्तरी में कुछ फल काटकर लायी। चन्दर ने देखा—आम। “अरे आम! अभी कहाँ से आम ले आयी? कौन लाया?”

“लखनऊ उतरी थी? वहाँ से तुम्हारे लिए लेती आयी।”

चन्दर ने एक आम की फाँक उठाकर खायी और किसी पुरानी घटना की याद दिलाने के लिए आँचल से हाथ पोंछ दिये। सुधा हँस पड़ी और बड़ी दुलार-भरी ताड़ना के स्वर में बोली, “बोलो, अब तो दिमाग नहीं बिगाड़ोगे अपना?”

“कभी नहीं सुधी, लेकिन पम्मी का क्या होगा? पम्मी से मैं सम्बन्ध नहीं तोड़ सकता। व्यवहार चाहे जितना सीमित कर दूँ।”

“मैं कब कहती हूँ, मैं तुम्हें कहीं से कभी बाँधना ही नहीं चाहती। जानती हूँ कि अगर चाहूँ भी तो कभी अपने मन के बाहुपाश ढीले कर तुम्हें चिरमुक्ति तो मैं न दे पाऊँगी, तो भला बन्धन ही क्यों बाँधूँ! पम्मी शाम को आयेगी?”

“शायद...”

दरवाजा खटका और गेसू ने प्रवेश किया। आकर, दौड़कर सुधा से लिपट गयी। चन्दर उठकर चला आया। “चले कहाँ भाईजान, बैठिए न।”

“नहा लूँ तब आता हूँ...” चन्दर चल दिया। वह इतना खुश था, इतना खुश कि बाथ-रूम में खूब गाता रहा और नहा चुकने के बाद उसे खयाल आया कि उसने बनियाइन उतारी ही नहीं थी। नहाकर कपड़े बदलकर वह आया तब भी गुनगुना रहा था। कमरे में आया तब देखा गेसू अकेली बैठी है।

“सुधा कहाँ गयी?” चन्दर ने नाचते हुए स्वर में कहा।

“गयी है शरबत बनाने।” गेसू ने चुन्नी से सिर ढँकते हुए और पाँवों को सलवार से ढँकते हुए कहा। चन्दर इधर-उधर बक्स में रूमाल ढूँढ़ने लगा।

“आज बड़े खुश हैं, चन्दर भाई! कोई खोयी हुई चीज मिल गयी है क्या? अरे, मैं बहन हूँ कुछ इनाम ही दे दीजिए।” गेसू ने चुटकी ली।

“इनाम की बात क्या, कहो तो वह चीज ही तुम्हें दे दूँ।”

“हाँ, कैलाश बाबू के दिल से पूछिए।” गेसू बोली।

“उनके दिल से तुम्हीं बात कर सकती हो!”

गेसू ने झेंपकर मुँह फेर लिया।

सुधा हाथ में दो गिलास लिए आयी। “लो गेसू पियो।” एक गिलास गेसू को देकर बोली, “चन्दर, लो।”

“तुम पियो न!”

“नहीं, मैं नहीं पिऊँगी। बर्फ मुझे नुकसान करेगी!” सुधा ने चुपचाप कहा। चन्दर

को याद आ गया। पहले सुधा चिढ़कर-चिढ़कर अपने आप चाय, शरबत पी जाती थी...और आज...

“क्या ढूँढ़ रहे हो, चन्दर?” सुधा बोली।

“रूमाल, कोई मिल ही नहीं रहा!”

“साल-भर में रूमाल खो दिये होंगे! मैं तो तुम्हारी आदत जानती हूँ। आज कपड़ा ला दो, कल सुबह रूमाल सी दूँ तुम्हारे लिए।” और उठकर उसने कैलाश के बक्स से एक रूमाल निकालकर दे दिया।

उसके बाद चन्दर बाजार गया और कैलाश के लिए तथा सुधा के लिए कुछ कपड़े खरीद लाया। इसके साथ ही कुछ नमकीन जो सुधा को पसन्द था, पेठा, एक तरबूज, एक बोतल गुलाब का शरबत, एक सुन्दर-सा पेन और जाने क्या-क्या खरीद लाया। सुधा ने देखकर कहा, “पापा नहीं हैं, फिर भी लगता है मैं मायके आयी हूँ!” लेकिन वह कुछ खा-पी नहीं सकी।

चन्दर खाना खाकर लॉन में बैठ गया, वहीं उसने अपनी चारपाई डलवा ली। सुधा के बिस्तर छत पर लगे थे। उसके पास महाराजिन सोनेवाली थीं। सुधा एक तश्तरी में तरबूज काटकर ले आयी और कुर्सी डालकर चन्दर भी चारपाई के पास बैठ गया। चन्दर तरबूज खाता रहा...थोड़ी देर बाद सुधा बोली—

“चन्दर, बिनती के बारे में तुम्हारी क्या राय है?”

“राय? राय क्या होती? बहुत अच्छी लड़की है! तुमसे तो अच्छी ही है!” चन्दर ने छेड़ा।

“अरे, मुझसे अच्छी तो दुनिया है, लेकिन एक बात पूछें? बहुत गम्भीर बात है!”

“क्या?”

“तुम बिनती से ब्याह कर लो।”

“बिनती से? कुछ दिमाग तो नहीं खराब हो गया है?”

“नहीं! इस बारे में पहले-पहले ‘ये’ बोले कि चन्दर से बिनती का ब्याह क्यों नहीं करती, तो मैंने चुपचाप पापा से पूछा। पापा बिल्कुल राजी हैं, लेकिन बोले मुझसे कि तुम्हीं कहो चन्दर से। कर लो; चन्दर! बुआजी अब दखल नहीं देंगी।”

चन्दर हँस पड़ा, “अच्छी खुराफतें तुम्हारे दिमाग में उठती हैं! याद है, एक बार और तुमने ब्याह करने के लिए कहा था?”

सुधा के मुँह से एक हल्का निःश्वास निकल पड़ा—“हाँ, याद है! खैर, तब की बात दूसरी थी, अब तो तुम्हें कर लेना चाहिए।”

“नहीं सुधा, शादी तो मुझे नहीं ही करनी है। तुम कह क्यों रही हो? तुम मेरे-बिनती के सम्बन्धों को कुछ गलत तो नहीं समझ रही हो?”

“नहीं जो, लेकिन यह जानती हूँ कि बिनती तुम पर अन्धश्रद्धा रखती है। उससे अच्छी लड़की तुम्हें मिलेगी नहीं। कम-से-कम जिन्दगी तुम्हारी व्यवस्थित हो जाएगी।”

चन्दर हँसा, “मेरी जिन्दगी शादी से नहीं, प्यार से सुधरेगी, सुधा! कोई ऐसी लड़की ढूँढ़ दो जो तुम्हारी जैसी हो और प्यार करे तो मैं समझूँ भी कि तुमने कुछ किया मेरे लिए। शादी-वादी बेकार है और कोई बात करनी है या नहीं?”

“नहीं चन्दर, शादी तो तुम्हें करनी ही होगी। अब मैं ऐसे तुम्हें नहीं रहने दूँगी। बिनती से न करो तो दूसरी लड़की ढूँढ़ूँगी। लेकिन शादी करनी होगी और मेरी पसन्द से करनी होगी।”

चन्दर एक उपेक्षा की हंसी हँसकर रह गया।

सुधा उठ खड़ी हुई।

“क्यों, चल दी?”

“हाँ, अब नींद आ रही होगी तुम्हें, सोओ।”

चन्दर ने रोका नहीं। उसने सोचा था, सुधा बैठेगी। जाने कितनी बातें करेंगे! वह सुधा से उसका सब हाल पूछेगा, लेकिन सुधा तो जाने कैसी तटस्थ, निरपेक्ष और अपने में सीमित-सी हो गयी है कि कुछ समझ में नहीं आता। उसने चन्दर से सब कुछ जान लिया लेकिन चन्दर के सामने उसने अपने मन को कहीं जाहिर ही नहीं होने दिया, सुधा उसके पास होकर भी जाने कितनी दूर थी! सरोवर में डूबकर पंछी प्यासा था।

करीब घण्टा-भर बाद सुधा दूध का गिलास लेकर आयी। चन्दर को नींद आ गयी थी। वह चन्दर के सिरहाने बैठ गयी—“चन्दर, सो गये क्या?”

“क्यों?” चन्दर घबराकर उठ बैठा।

“लो, दूध पी लो।” सुधा बोली।

“दूध हम नहीं पियेंगे।”

“पी लो, देखो बर्फ और शरबत मिला दिया है, पीकर तो देखो!”

“नहीं, हम नहीं पियेंगे। अब जाओ, हमें नींद लग रही है।” चन्दर गुस्सा था।

“पी लो मेरे राजदुलारे, चमक रहे हैं चाँद-सितारे...” सुधा ने लोरी गाते हुए चन्दर को अपनी गोद में खींचकर बच्चों की तरह गिलास चन्दर के मुँह से लगा दिया। चन्दर ने चुपचाप दूध पी लिया। सुधा ने गिलास नीचे रखकर कहा, “वाह, ऐसे तो मैं नीलू को दूध पिलाती हूँ।”

“नीलू कौन?”

“अरे मेरा भतीजा! शंकरबाबू का लड़का।”

“अच्छा!”

“चन्दर, तुमने पंखा तो छत पर लगा दिया है। तुम कैसे सोओगे?”

“मुझे नींद आ जायेगी।”

चन्दर फिर लेट गया। सुधा उठी नहीं। वह दूसरी पाटी से हाथ टेककर चन्दर के वक्ष के आर-पार फूलों के धनुष-सी झुककर बैठ गयी। एकादशी का स्निग्ध पवित्र चन्द्रमा आसमान की नीली लहरों पर अधखिले बेल के फूल की तरह काँप रहा था। दूध में नहाये हुए झोंके चाँदनी से आँख-मिचौली खेल रहे थे। चन्दर आँखें बन्द किये पड़ा था और उसकी पलकों पर, उसके माथे पर, उसके होंठों पर चाँदी की पाँखुरियाँ बरस रही थीं। सुधा ने चन्दर का कॉलर ठीक किया और बड़े ही मधुर स्वर में पूछा, “चन्दर, नींद आ रही है?”

“नहीं, नींद उचट गयी!” चन्दर ने आँख खोलकर देखा। एकादशी का पवित्र चन्द्रमा आकाश में था और पूजा से अभिषिक्त एकादशी की उदास चाँदनी उसके वक्ष पर झुकी बैठी थी। उसे लगा जैसे पवित्रता और अमृत का चम्पई बादल उसके प्राणों में लिपट गया है।

उसने करवट बदलकर कहा, “सुधा, जिन्दगी का एक पहलू खत्म हुआ। दर्द की एक मंजिल खत्म हो गयी। थकान भी दूर हो गयी, लेकिन अब आगे का रास्ता समझ में नहीं आता। क्या करूँ?”

“करना बहुत है, चन्दर! अपने अन्दर की बुराई से लड़ लिये, अब बाहर की बुराई से लड़ो। मेरा तो सपना था चन्दर कि तुम बहुत बड़े आदमी बनोगे। अपने बारे में तो जो कुछ सोचा था वह सब नसीब ने तोड़ दिया। अब तुम्हीं को देखकर कुछ सन्तोष मिलता है। तुम जितने ऊँचे बनोगे, उतना ही चैन मिलेगा। वर्ना मैं तो नरक में भुन रही हूँ।”

“सुधा, तुम्हारी इसी बात से मेरी सारी हिम्मत, सारा बल टूट जाता है। अगर तुम अपने परिवार में सुखी होतीं तो मेरा भी साहस बँधा रहता। तुम्हारा यह हाल, तुम्हारा यह स्वास्थ्य, यह असमय वैराग्य और पूजा, यह घुटन देखकर लगता है क्या करूँ? किसके लिए करूँ?”

“मैं भी क्या करूँ, चन्दर! मैं यह जानती हूँ कि अब ये भी मेरा बहुत खयाल रखते हैं, लेकिन इस बात पर मुझे और भी दुःख होता है। मैं इन्हें सन्तुलित नहीं कर पाती और उनकी खुलकर उपेक्षा भी नहीं कर पाती। यह अजब-सा नरक है मेरा जीवन भी, लेकिन यह जरूर है चन्दर कि तुम्हें ऊँचा देखकर मैं यह नरक भी भोग ले जाऊँगी। तुम दिल

मत छोटा करो। एक ही जिन्दगी की तो बात है, उसके बाद.... ”

“लेकिन मैं तो पुनर्जन्म में विश्वास ही नहीं करता।”

“तब तो और भी अच्छा है, इसी जन्म में जो सुख दे सकते हो, दे लो। जितना ऊँचे उठ सकते हो, उठ लो।”

“तुम जो रास्ता बताओ वह मैं अपनाने के लिए तैयार हूँ। मैं सोचता हूँ, अपने व्यक्तित्व से ऊपर उटूँ...लेकिन मेरे साथ एक शर्त है। तुम्हारा प्यार मेरे साथ रहे!”

“तो वह अलग कब रहा, चन्दर! तुम्हीं ने जब चाहा मुँह फेर लिया। लेकिन अब नहीं। काश कि तुम एक क्षण का भी अनुभव कर पाते कि तुमसे दूर वहाँ, वासना के कीचड़ में फँसी हुई मैं कितनी व्याकुल, कितनी व्यथित हूँ तो तुम ऐसा कभी न करते! मेरे जीवन में जो कुछ अपूर्णता रह गयी है चन्दर, उसकी पूर्णता, उसकी सिद्धि तुम्हीं हो। तुम्हें मेरे जन्म-जन्मान्तर की शान्ति की सौगन्ध है, तुम अब इस तरह न करना! बस ब्याह कर लो और दृढ़ता से ऊँचाई की ओर चलो।”

“ब्याह के अलावा तुम्हारी सब बातें स्वीकार हैं। लेकिन फिर भी तुम अपना प्यार वापस नहीं लोगी कभी?”

“कभी नहीं।”

“और हम कभी नाराज भी हो जाएँ तो बुरा नहीं मानोगी?”

“नहीं!”

“और हम कभी फिसलें तो तुम तटस्थ होकर नहीं बैठोगी बल्कि बिना डरे हुए मुझे खींच लाओगी उस दलदल से?”

“यह कठिन है चन्दर, आखिर मेरे भी बन्धन हैं। लेकिन खैर...अच्छा यह बताओ, तुम दिल्ली कब आओगे?”

“अब दिल्ली तो दशहरे में आऊँगा। गर्मियों में यही रहूँगा।...लेकिन हो सका तो लौटने के बाद शाहजहाँपुर आऊँगा।”

सुधा चुपचाप बैठी रही। चन्दर भी चुपचाप लेटा रहा। थोड़ी देर बाद चन्दर ने सुधा की हथेली अपने हाथ पर रख ली और आँखें बन्द कर लीं। जब वह सो गया तो सुधा ने धीरे-से हाथ उठाया, खड़ी हो गयी। थोड़ी देर अपलक उसे देखती रही और धीरे-धीरे चली आयी।

दूसरे दिन सुबह सुधा ने आकर चन्दर को जगाया। चन्दर उठ बैठा तो सुधा बोली—
“जल्दी से नहा लो, आज तुम्हारे साथ पूजा करेंगे!”

चन्दर उठ बैठा। नहा-धोकर आया तो सुधा ने चौकी के सामने दो आसन बिछा रखे थे। चौकी पर धूप सुलग रही थी और फूल गमक रहे थे। ढेर-के-ढेर बेलें और आगस्त के फूल। चन्दर को बिठाकर सुधा बैठी। उसने फिर वही वेश धारण कर लिया था। रेशम की धोती और रेशम का एक अन्तर्वासक, गीले बाल पीठ पर लहरा रहे थे।
“लेकिन मैं बैठा-बैठा क्या करूँगा?” उसने पूछा।

सुधा कुछ नहीं बोली। चुपचाप अपना काम करती गयी। थोड़ी देर बाद उसने भागवत खोली और बड़े मधुर स्वरों में गोपिका-गीत पढ़ती रही। चन्दर संस्कृत नहीं समझता था, पूजा में विश्वास नहीं करता था, लेकिन वह क्षण जाने कैसा लग रहा था! चन्दर की साँस में धूप की पावन सौरभ के डोरे गुँथ गये थे। उसके घुटनों पर रह-रहकर सद्यःस्नाता सुधा के भीगे केशों से गीले मोती चू पड़ते थे। कृशकाय, उदास और पवित्र सुधा की पूजा के प्रसाद जैसे मधुर स्वर में श्रीमद्भागवत के श्लोक उसकी आत्मा को अमृत से धो रहे थे। लगता था, जैसे इस पूजा की श्रद्धान्वित वेला में उसके जीवन-भर की भूलें, कमजोरियाँ, गुनाह सभी धुलता जा रहा था।...जब सुधा ने भागवत बन्द करके रख दिया तो पता नहीं क्यों चन्दर ने प्रणाम कर लिया—भागवत को या भागवत की पुजारिन को, यह नहीं मालूम।

थोड़ी देर बाद सुधा ने पूजा की थाली उठायी और उसने चन्दर के माथे पर रोली लगा दी।

“अरे मैं!”

“हाँ तुम! और कौन...मेरे तो दूसरा न कोई!” सुधा बोली और ढेर-के-ढेर फूल चन्दर के चरणों पर चढ़ाकर, झुककर चन्दर के चरणों को प्रणाम कर लिया। चन्दर ने घबराकर पाँव खींच लिए, “मैं इस योग्य नहीं हूँ, सुधा! क्यों लज्जित कर रही हो?”

सुधा कुछ नहीं बोली...अपने आँचल से एक छलकता हुआ आँसू पोंछकर नाशता लाने चली गयी।

जब वह यूनिवर्सिटी से लौटा तो देखा, सुधा मशीन रखे कुछ सिल रही है। चन्दर ने कपड़े बदलकर पूछा, “कहो, क्या सिल रही हो?”

“रूमाल और बनियाइन! कैसे काम चलता था तुम्हारा? न सन्दूक में एक भी रूमाल है, न एक भी बनियाइन। लापरवाही की भी हद है। तभी कहती हूँ ब्याह कर लो!”

“हाँ, किसी दर्जी की लड़की से ब्याह करवा दो!” चन्दर खाट पर बैठ गया और

सुधा मशीन पर बैठी-बैठी सिलती रही। थोड़ी देर बाद सहसा उसने मशीन रोक दी और एकदम से घबरा कर उठी।

“क्या हुआ, सुधा...”

“बहुत दर्द हो रहा है...” वह उठी और खाट पर बेहोश-सी पड़ रही। चन्दर दौड़कर पंखा उठा लाया। और झलने लगा। “डॉक्टर बुला लाऊँ?”

“नहीं, अभी ठीक हो जाऊँगी। उबकाई आ रही है!” सुधा उठी।

“जाओ मत, मैं पीकदान उठा लाता हूँ।” चन्दर ने पीकदान उठाकर रख दिया और सुधा की पीठ सहलाने लगा। फिर सुधा हाँफती-सी लेट गयी। चन्दर दौड़कर इलायची और पानी ले आया। सुधा ने इलायची खायी और फिर पड़ी रही। उसके माथे पर पसीना झलक आया।

“अब कैसी तबीयत है, सुधा?”

“बहुत दर्द है अंग-अंग में...मशीन चलाना नुकसान कर गया।” सुधा ने बहुत क्षीण स्वरों में कहा।

“जाऊँ किसी डॉक्टर को बुला लाऊँ?”

“बेकार है, चन्दर! मैं तो लखनऊ में दिखा आयी। इस रोग का क्या इलाज है। यह तो जिन्दगी भर का अभिशाप है!”

“क्या बीमारी बतायी तुम्हें?”

“कुछ नहीं।”

“बताओ न?”

“क्या बताऊँ, चन्दर!” सुधा ने बड़ी कातर निगाहों से चन्दर की ओर देखा और फूट-फूटकर रो पड़ी। बुरी तरह सिसकने लगी। सुधा चुपचाप पड़ी कराहती रही। चन्दर ने अटैची में से दवा निकालकर दी। कॉलेज नहीं गया। दो घंटे बाद सुधा कुछ ठीक हुई। उसने एक गहरी साँस ली और तकिये के सहारे उठकर बैठ गयी। चन्दर ने और कई तकिये पीछे रख दिये। दो ही घंटे में सुधा का चहेरा पीला पड़ गया। चन्दर चुपचाप उदास बैठा रहा।

उस दिन सुधा ने खाना नहीं खाया। सिर्फ फल लिये। दोपहर को दो बजे भयंकर लू में कैलाश वापस आया और आते ही चन्दर से पूछा, “सुधा की तबीयत तो ठीक रही?” यह जानकर कि सुबह खराब हो गयी थी, वह कपड़े उतारने के पहले सुधा के कमरे में गया और अपने हाथ से दवा देकर फिर कपड़े बदलकर सुधा के कमरे में जाकर सो गया। बहुत थका मालूम पड़ता था।

चन्दर आकर अपने कमरे में कॉपियाँ जाँचता रहा। शाम को कामिनी, प्रभा तथा कई लड़कियाँ, जिन्हें गेसू ने खबर दे दी थी, आयीं और सुधा और कैलाश को घेरे रहीं। चन्दर उनकी खातिर-तवज्जो में लगा रहा। रात को कैलाश ने उसे अपनी छत पर बुला लिया और चन्दर के भविष्य के कार्यक्रम के बारे में बात करता रहा। जब कैलाश को नींद आने लगी, तब वह उठकर लॉन पर लौट आया और लेट गया।

बहुत देर तक उसे नींद नहीं आयी। वह सुधा की तकलीफों के बारे में सोचता रहा। उधर सुधा बहुत देर तक करवटें बदलती रही। यह दो दिन सपनों की तरह बीत गये और कल वह फिर चली जाएगी चन्दर से दूर, न जाने कब तक के लिए!

सुबह से ही सुधा जैसे बुझ गयी थी। कल तक जो उसमें उल्लास वापस आ गया था, वह जैसे कैलाश की छाँह ने ही ग्रस लिया था। चन्दर के कॉलेज का आखिरी दिन था। चन्दर कैलाश को ले गया और अपने मित्रों से, प्रोफेसरों से उसका परिचय करा लाया। एक प्रोफेसर, जिनकी आदत थी कि वे कांग्रेस सरकार से सम्बन्धित हर व्यक्ति को दावत जरूर देते थे, उन्होंने कैलाश को भी दावत दी क्योंकि वह सांस्कृतिक मिशन में जा रहा था।

वापस जाने के लिए रात की गाड़ी तय रही। हफ्ते भर बाद ही कैलाश को जाना था अतः वह ज्यादा नहीं रुक सकता था। दोपहर का खाना दोनों ने साथ खाया। सुधा महाराजिन का लिहाज करती थी, अतः वह कैलाश के साथ खाने नहीं बैठी। निश्चय हुआ कि अभी से सामान बाँध लिया जाए ताकि पार्टी के बाद सीधे स्टेशन जा सकें।

जब सुधा ने चन्दर के लाये हुए कपड़े कैलाश को दिखाये तो उसे बड़ा ताज्जुब हुआ। लेकिन उसने कुछ नहीं कहा, कपड़े रख लिये और चन्दर से जाकर बोला, “अब जब तुमने लेने-देने का व्यवहार ही निभाया है तो यह बता दो, तुम बड़े हो या छोटे?”

“क्यों?” चन्दर ने पूछा।

“इसलिए कि बड़े हो तो पैर छूकर जाऊँ, और छोटे हो तो रुपया देकर जाऊँ!” कैलाश बोला। चन्दर हँस पड़ा।

घर में दोपहर से ही उदासी छा गयी। न चन्दर दोपहर को सोया, न कैलाश और न सुधा। शाम की पार्टी में सब लोग गये। वहाँ से लौटकर आये तो सुधा को लगा कि उसका मन अभी डूब जाएगा। उसे शादी में भी जाना इतना नहीं अखरा था जितना आज अखर रहा था। मोटर पर सामान रखा जा रहा था तो वह खम्भे से टिककर खड़ी रो रही थी। महाराजिन एक टोकरी में खाने का सामान बाँध रही थी।

कैलाश ने देखा तो बोला, “रो क्यों रही हो? छोड़ जाँ तुम्हें यहीं? चन्दर से

सँभलेगा!" सुधा ने आँसू पोंछकर आँखों से डाँटा—"महराजिन सुन रही हैं कि नहीं।" मोटर तक पहुँचते-पहुँचते सुधा फूट-फूटकर रो पड़ी और महराजिन उसे गले से लगाकर आँसू पोंछने लगीं। फिर बोलीं, "रोवौ न बिटिया! अब छोटे बाबू का बियाह कर देव तो दुई-तीन महीना आयके रह जाव। तोहार सास छोड़िहैं कि नै?"

सुधा ने कुछ जवाब नहीं दिया और पाँच रुपये का नोट महराजिन के हाथ में थमाकर आ बैठी।

ट्रेन प्लेटफॉर्म पर आ गयी थी। सेकेंड क्लास में चन्दर ने इन लोगों का बिस्तर लगवा दिया। सीट रिजर्व करवा दी। गाड़ी छूटने में अभी घण्टा भर देर थी। सुधा की आँखों में विचित्र-सा भाव था। कल तक की दृढ़ता, तेज, उल्लास बुझ गया था और अजब-सी कातरता आ गयी थी। वह चुप बैठी थी। चन्दर से जब नहीं देखा गया तो वह उठकर प्लेटफॉर्म पर टहलने लगा। कैलाश भी उतर गया। दोनों बातें करने लगे। सहसा कैलाश ने चन्दर के कन्धे पर हाथ रखकर कहा, "हाँ यार, एक बात बहुत जरूरी थी।"

"क्या?"

"इन्होंने तुमसे बिनती के बारे में कुछ कहा?"

"कहा था।"

"तो क्या सोचा तुमने?"

"मैं शादी-वादी नहीं करूँगा।"

"यह सब आदर्शवाद मुझे अच्छा नहीं लगा, और फिर उससे शादी करके सच पूछो तो बहुत बड़ी बात करोगे तुम! उस घटना के बाद अब ब्राह्मणों में तो वर उसे मिलने से रहा। और ये कह रही थीं कि वह तुम्हें मानती भी बहुत है।"

"हाँ, लेकिन इसके मतलब यह नहीं कि मैं शादी कर लूँ। मुझे बहुत कुछ करना है।"

"अरे जाओ यार, तुम सिवा बातों के कुछ नहीं कर सकते।"

"हो सकता है।" चन्दर ने बात टाल दी। वह शादी तो नहीं ही करेगा।

थोड़ी देर बाद चन्दर ने पूछा, "इन्हें दिल्ली कब भेजोगे?"

"अभी तो जिस दिन मैं जाऊँगा, उस दिन ये दिल्ली मेरे साथ जाएँगी, लेकिन दूसरे दिन शाहजहाँपुर लौट जाएँगी।"

"क्यों?"

"अभी माँ बहुत बिगड़ी हुई हैं। वह इन्हें आने थोड़े ही देती थीं। वह तो लखनऊ के बहाने मैं इन्हें ले आया। तुम शंकर भइया से कभी जिक्र मत करना—अब दिल्ली तो इसलिए चली जाएँ कि मैं दो-तीन महीने बाद लौटूँगा...फिर शायद सितम्बर, अक्टूबर

में ये तीन-चार महीने के लिए दिल्ली जाएँगी। यू नो शी इज कैरीइङ्ग!"

"हाँ, अच्छा!"

"हाँ, यही तो बात है, पहला मौका है।"

दोनों लौटकर कम्पार्टमेंट में बैठ गये।

सुधा बोली, "तो सितम्बर में आओगे न, चन्दर?"

"हाँ-हाँ!"

"जरूर से? फिर उस वक्त कोई बहाना न बना देना।"

"जरूर आऊँगा!"

कैलाश उतरकर कुछ लेने गया तो सुधा ने अपनी आँखों से आँसू पोंछकर झुककर चन्दर के पाँव छू लिये और रोकर बोली, "चन्दर, अब बहुत टूट चुकी हूँ... अब हाथ न खींच लेना..." उसका गला रुँध गया।

चन्दर ने सुधा के हाथों को अपने हाथ में ले लिया और कुछ भी नहीं बोला। सुधा थोड़ी देर चुप रही, फिर बोली—

"चन्दर, चुप क्यों हो? अब तो नफरत नहीं करोगे? मैं बहुत अभागी हूँ, देवता! तुमने क्या बनाया था और अब क्या हो गयी!... देखो, अब चिट्ठी लिखते रहना। नहीं तो सहारा टूट जाता है..." और फिर वह रो पड़ी।

कैलाश कुछ किताबें और पत्रिकाएँ खरीदकर वापस आ गया। दोनों बैठकर बातें करते रहे। यह निश्चय हुआ कि जब कैलाश लौटेगा तो बजाय बम्बई से सीधे दिल्ली जाने के, वह प्रयाग से होता हुआ जाएगा।

गाड़ी चली तो चन्दर ने कैलाश को बहुत प्यार से गले लगा लिया। जब तक गाड़ी प्लेटफॉर्म के अन्दर रही, सुधा सिर निकाले झाँकती रही। प्लेटफॉर्म के बाहर भी पीली चाँदनी में सुधा का फहराता हुआ आँचल दिखता रहा। धीरे-धीरे वह एक सफेद बिन्दु बनकर अदृश्य हो गया। गाड़ी एक विशाल अजगर की तरह चाँदनी में रेंगती चली जा रही थी।

जब मन में प्यार जाग जाता है तो प्यार की किरन बादलों में छिप जाती है। अजब थी चन्दर की किस्मत! इस बार तो, सुधा गयी थी तो उसके तन-मन को एक गुलाबी नशे में सराबोर कर गयी थी। चन्दर उदास नहीं था। वह बेहद खुश था। खूब घूमता था और गरमी के बावजूद खूब काम करता था। अपने पुराने नोट्स निकाल लिये थे और एक

नयी किताब की रूपरेखा सोच रहा था। उसे लगता था कि उसका पौरुष, उसकी शक्ति, उसका ओज, उसकी दृढ़ता, सभी कुछ लौट आया है। उसे हरदम लगता कि गुलाबी पाँखुरियों की एक छाया उसकी आत्मा को चूमती रहती है। वह जब कभी लेटता तो उसे लगता कि सुधा फूलों के धनुष की तरह उसके पलंग के आर-पार पाटी पर हाथ टेके बैठी है। उसे लगता—कमरे में अब भी धूप की सौरभ लहरा रही है और हवाओं में सुधा के मधुर कंठ के श्लोक गूँज रहे हैं।

दो ही दिन में चन्दर को लग रहा था कि उसकी जिन्दगी में जहाँ जो कुछ टूट-फूट गया है, वह सब सँभल रहा है। वह सब अभाव धीरे-धीरे भर रहा है। उसके मन का पूजा-गृह खँडहर हो चुका था, सहसा उस पर जैसे किसी ने आँसू छिड़ककर जीवन के वरदान से अभिषिक्त कर दिया था। पत्थर के बीच दबकर पिसे हुए पूजा-गीत फिर से सस्वर हो उठे थे। मुरझाये हुए पूजा-फूलों की पाँखुरियों में फिर रस छलक आया था और रंग चमक उठे थे। धीरे-धीरे मन्दिर का कँगूरा फिर सितारों से समझौता करने की तैयारी करने लगा था। चन्दर की नसों में वेद-मन्त्रों की पवित्रता और ब्रज की वंशी की मधुराई पलकों में पलकें डालकर नाच उठी थी। सारा काम जैसे वह किसी अदृश्य आत्मा की आज्ञा से करता था। वह आत्मा सिवा सुधा के और भला किसकी थी! वह सुधामय हो रहा था। उसके कदम-कदम में, बात-बात में, साँस-साँस में सुधा का प्यार फिर से लौट आया था।

तीसरे दिन बिनती का एक पत्र आया। बिनती ने उसे दिल्ली बुलाया था और मामाजी (डॉक्टर शुक्ला) भी चाहते थे कि चन्दर कुछ दिन के लिए दिल्ली चला आये तो अच्छा है। चन्दर के लिए कुछ कोशिश भी कर रहे थे। उसने लिख दिया कि वह मई के अन्त में या जून के प्रारम्भ में आएगा। और बिनती को बहुत, बहुत-सा स्नेह। उसने सुधा के आने की बात नहीं लिखी क्योंकि कैलाश ने मना कर दिया था।

सुबह चन्दर गंगा नहाता, नयी पुस्तकें पढ़ता, अपने नोट्स दोहराता। दोपहर को सोता और रेडियो बजाता, शाम को घूमता और सिनेमा देखता, सोते वक्त कविताएँ पढ़ता और सुधा के प्यार के बादलों में मुँह छिपाकर सो जाता। जिस दिन कैलाश जाने वाला था, उसी दिन उसका एक पत्र आया कि वह और सुधा दिल्ली आ गये हैं। शंकर भइया और नीलू उसे पहुँचाने बम्बई जाएँगे। चन्दर सुधा के इलाहाबाद जाने का जिक्र किसी को भी न लिखे। यह उसके और चन्दर के बीच की बात थी। खत के नीचे कुछ लाइनें थीं।

“चन्दर,

राम-राम। तुमने मुझे जो साड़ी दी थी वह क्या अपनी भावी श्रीमती के नाप की थी? वह मेरे घुटनों तक आती है। बूढ़ी होकर घिस जाऊँगी तो उसे पहना करूँगी—अच्छा

स्नेह। और जो तुमसे कह आयी हूँ उन बातों का ध्यान रहेगा न? मेरी तन्दुरुस्ती ठीक है। इधर मैंने गांधीजी की आत्मकथा पढ़नी शुरू की है।

तुम्हारी—सुधा।

“... और हाँ, लालाजी! मिठाई खिलाओ, दिल्ली में बहुत खबर है कि शरणार्थी विभाग में प्रयाग के एक प्रोफेसर आने वाले हैं!”

कैलाश तो अब बम्बई चल दिया होगा। बम्बई के पते से उसने बधाई का एक तार भेज दिया और सुधा को एयर मेल से उसने एक खत भेजा जिसमें उसने बहुत-सी मिठाइयों का चित्र बना दिया था।

लेकिन वह पसोपेश में पड़ गया। दिल्ली जाए या न जाए। वह अपने अन्तर्मन से सरकारी नौकरी का विरोधी था। उसे तत्कालीन भारतीय सरकार और ब्रिटिश सरकार में ज्यादा अन्तर नहीं लगता था। फिर हर दृष्टिकोण से वह समाजवादियों के अधिक समीप था। और अब वह सुधा से वायदा कर चुका था कि वह काम करेगा। ऊँचा बनेगा। प्रसिद्ध होगा, लेकिन पद स्वीकार कर ऊँचा बनना उसके चरित्र के विरुद्ध था। किन्तु डॉक्टर शुक्ला कोशिश कर रहे थे। चन्दर केन्द्रीय सरकार के किसी ऊँचे पद पर आए, यह उनका सपना था। चन्दर को कॉलेज की स्वच्छन्द और ढीली नौकरी पसन्द थी। अन्त में उसने यह सोचा कि पहले नौकरी स्वीकार कर लेगा। बाद में फिर कॉलेज चला आएगा—एक दिन रात को जब वह बिजली बुझाकर, किताब बन्द कर सीने पर रखकर सितारों को देख रहा था और सोच रहा था कि अब सुधा दिल्ली लौट गयी होगी, अगर दिल्ली रह गया तो बँगले में किसे टिकाया जाएगा... इतने में किसी व्यक्ति ने फाटक खोलकर बँगले में प्रवेश किया। उसे ताज्जुब हुआ कि इतनी रात को कौन आ सकता है, और वह भी साइकिल लेकर! उसने बिजली जला दी। तार वाला था।

साइकिल खड़ी कर, तार वाला लॉन पर चला गया और तार दे दिया। दस्तखत करके उसने लिफाफा फाड़ा। तार डॉक्टर साहब का था। लिखा था कि “अगली ट्रेन से फौरन चले आओ। स्टेशन पर सरकारी कार होगी सलेटी रंग की।” उसके मन ने फौरन कहा, चन्दर, हो गये तुम केन्द्र में!

उसकी आँखों से नींद गायब हो गयी। वह उठा, अगली ट्रेन सुबह तीन बजे जाती थी। ग्यारह बजे थे। अभी चार घंटे थे। उसने एक अटैची में कुछ अच्छे-से-अच्छे सूट रखे, किताबें रखीं, और माली को सहेजकर चल दिया। मोटर को स्टेशन से वापस लाने की दिक्कत होती, ड्राइवर अब था नहीं, अतः नौकर को अटैची देकर पैदल चल दिया। राह में सिनेमा से लौटता हुआ रिक्शा मिल गया।

चन्दर ने सेकेंड क्लास का टिकट लिया और ठाठ से चला। कानपुर में उसने सादी

चाय पी और इटावा में रेस्तराँ-बार में जाकर खाना खाया। उसके बगल में मारवाड़ी दम्पती बैठे थे जो सेकेंड क्लास का किराया खर्च करके प्रायश्चित्त स्वरूप एक आने की पकौड़ी और दो आने की दालमोठ से उदर-पूर्ति कर रहे थे। हाथरस स्टेशन पर एक मजेदार घटना घटी। हाथरस में छोटी और बड़ी लाइनें क्रॉस करती हैं। छोटी लाइन ऊपर पुल पर खड़ी होती है। स्टेशन के पास जब ट्रेन धीमी हुई तो सेठजी सो रहे थे। सेठानी ने बाहर झाँककर देखा और निस्संकोच उनके पृथुल उदर पर कर-प्रहार करके कहा, “हो! देखो रेलगाड़ी के सिर पर रेलगाड़ी!” सेठ एकदम चौंककर जागे और उछलकर बोले, “बाप रे बाप! उलट गयी रेलगाड़ी। जल्दी सामान उतार। गये राम! ये तो जंगल है। कहते थे जेवर न ले चल।”

चन्दर खिलखिलाकर हँस पड़ा। सेठजी ने परिस्थिति समझी और चुपचाप बैठ गये। चन्दर करवट बदलकर फिर पढ़ने लगा।

इतने में ऊपर की गाड़ी से उतर कर कोई औरत हाथ में एक गठरी लिये आयी और अन्दर ज्यों ही घुसी कि मारवाड़ी बोला, “बुढ़्दी, यह सेकेंड क्लास है।”

“होई! सेकेंड-थर्ड तो सब गोविन्द की माया है, बच्चा!”

चन्दर का मुँह दूसरी ओर था, लेकिन उसने सोचा गोविन्दजी की माया का वर्णन और विश्लेषण करते हुए रेल के डब्बों के वर्गीकरण को भी मायाजाल बताना शायद भागवतकार की दिव्यदृष्टि से सम्भव होगा। लेकिन यह भी मारवाड़ी कोई सुधा तो था नहीं कि वैष्णव साहित्य और गोविन्दजी की माया का भक्त होता। जब उसने कहा गार्ड साहब को बुलाऊँ? तो बुढ़िया गरज उठी—“बस-बस, चल हुआँ से, गार्ड का तोर दमाद लगत है जौन बुलाइहै। मोटका कद्दू!”

चन्दर हँस पड़ा, कम-से-कम गाली की नवीनता पर। दूसरी बात; गाड़ी उस समय ब्रजक्षेत्र में थी, वहाँ यह अवधी का सफल वक्ता कौन है! उसने घूमकर देखा। एक बुढ़िया थी, सिर मुड़ाये। उसने कहीं देखा है इसे!

“कहाँ जाओगी, माई?”

“कानपुर जाबै।”

“लेकिन यह गाड़ी तो दिल्ली जाएगी?”

“तुहूँ बोल्यो टुप्प से! हम ऐसे धमकावे में नै आइत। ई कानपुर जइहै!” उसने हाथ नचाकर चन्दर से कहा। और फिर जाने क्यों रुक गयी और चन्दर की ओर देखने लगी। फिर बोली, “अरे चन्दर बेटवा, कहाँ से आवत हौ तू!”

“ओह! बुआजी हैं। सिर मुड़ा लिया तो पहचान में ही नहीं आतीं!” चन्दर ने फौरन

उठकर पाँव छुए। बुआजी वृन्दावन से आ रही थीं। वह बैठ गयीं, बोलीं,

“ऊ नटिनियाँ मर गयी कि अबहिन है?”

“कौन?”

“ओही बिनती!”

“मरेगी क्यों?”

“भइया! सुकुल तो हमार कुल डुबोय दिहिन। लेकिन जैसे ऊ हमरी बिटिया के मड़वा तरे से उठाय लिहिन वैसे भगवान् चाही तो उनहू का लड़की से समझी!”

चन्दर कुछ नहीं बोला। थोड़ी देर बाद खुद बड़बड़ाती हुई बुआजी बोलीं, “अब हमें का करै को है। हम सब मोह-माया त्याग दिया। लेकिन हमरे त्याग में कुच्छौ समरथ है तो सुकुल को बदला मिलिहै!”

कानपुर की गाड़ी आयी तो चन्दर खुद उन्हें बिठाल आया। विचित्र थीं बुआजी, बेचारी कभी समझ ही नहीं पायीं कि बिनती को उठाकर डॉक्टर साहब ने उपकार किया या अपकार और मजा तो यह है कि एक ही वाक्य के पूर्वार्द्ध में मायामोह से विरक्ति की घोषणा और उत्तरार्द्ध में दुर्वासा का शाप... हिन्दुस्तान के सिवा ऐसे नमूने कहीं भी मिलने मुश्किल हैं। इतने में चन्दर की गाड़ी ने सीटी दी। वह भागा। बुआजी ने चन्दर का खयाल छोड़कर अपने बगल के मुसाफिर से लड़ना शुरू कर दिया।

वह दिल्ली पहुँचा। दो-तीन साल पहले भी वह दिल्ली आया था लेकिन अब दिल्ली स्टेशन की चहल-पहल ही दूसरी थी। गाड़ी घण्टा-भर लेट थी। नौ बज चुके थे। अगर मोटर न मिली तो भी इतनी मशहूर सड़क पर डॉक्टर साहब का बैंगला था कि चन्दर को विशेष दिक्कत न होती। लेकिन ज्यों ही वह प्लेटफॉर्म से बाहर निकला तो उसने देखा कि जहाँ मरकरी की बड़ी सर्चलाइट लगी है, ठीक उसी के नीचे सलेटी रंग की शानदार कार खड़ी थी जिसके आगे-पीछे क्राउन लगा था और सामने तिरंगा, आगे लाल वर्दी पहने एक खानसामा बैठा है। और पीछे एक सिख ड्राइवर खड़ा है। चन्दर का सूट चाहे जितना अच्छा हो लेकिन इस शान के लायक तो नहीं ही था। फिर भी वह बड़े रोब से गया और ड्राइवर से बोला, “यह किसकी मोटर है?”

“सर्कारी गड़्डी हैज्जी।” सिख ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया।

“क्या यह डॉक्टर शुक्ला ने भेजी है?”

“जी हाँ, हुजूर!” एकदम उसका स्वर बदल गया—“आप ही उनके लड़के हैं—चन्दर बहादुर साहब?” उसने उतरकर सलाम किया। दरवाजा खोला, चन्दर बैठ गया। कुली को एक अटैची के लिए एक अठन्नी दी। मोटर उड़ चली।

चन्दर बहुत उदार विचारों का था लेकिन आज तक वह डॉक्टर साहब की उन्नीसवीं सदी वाली पुरानी कार पर ही चढ़ा था। इस राजमुकुट और राष्ट्रीय ध्वज से सुशोभित मोटर पर खानसामे के साथ चढ़ने का उसका पहला ही मौका था। उसे लगा जैसे इस समय तिरंगे का गौरव और महान् ब्रिटिश साम्राज्य के इस क्राउन का शासनदम्भ उसके मन को उड़ाये लिये जा रहा है। चन्दर तनकर बैठा लेकिन थोड़ी देर बाद स्वयं उसे अपने मन पर हँसी आ गयी। फिर वह सोचने लगा कि जिन लोगों के हाथ में आज शासन-सत्ता है; मोटरों और खानसामों ने उनके हृदयों को इस तरह बदल दिया है। वे भी तो बेचारे आदमी हैं, इतने दिनों से प्रभुता के प्यासे। बेकार हम लोग उन्हें गाली देते हैं। फिर चन्दर उन लोगों का खयाल करके हँस पड़ा।

दिल्ली में इलाहाबाद की अपेक्षा कम गरमी थी। कार एक बँगले के अन्दर मुड़ी और पोर्टिको में रुक गयी। बँगला नये सादे अमेरिकन ढंग का बना हुआ था। खानसामे ने उतरकर दरवाजा खोला। चन्दर उतर पड़ा। ड्राइवर ने हॉर्न दिया। दरवाजा खुला और बिनती निकली। उसका मुँह सूखा हुआ था, बाल अस्त-व्यस्त थे और आँखें जैसे रो-रोकर सूज गयी थीं। चन्दर का दिल धक् से हो गया, राह-भर के सुनहरे सपने टूट गये।

“क्या बात है, बिनती? अच्छी तो हो?” चन्दर ने पूछा।

“आओ, चन्दर?” बिनती ने कहा और अन्दर जाते ही दरवाजा बन्द कर दिया और चन्दर की बाँह पकड़कर सिसक-सिसककर रो पड़ी। चन्दर घबरा गया। “क्या बात है? बताओ न! डॉक्टर साहब कहाँ हैं?”

“अन्दर हैं?”

“तब क्या हुआ? तुम इतनी दुःखी क्यों हो?” चन्दर ने बिनती के सिर पर हाथ रखकर पूछा... उसे लगा जैसे इस समस्त वातावरण पर किसी बड़े भयानक मृत्यु-दूत के पंखों की काली छाया है... “क्या बात है? बताती क्यों नहीं?”

बिनती बड़ी मुश्किल से बोली, “दीदी... सुधा दीदी...”

चन्दर को लगा जैसे उस पर बिजली टूट पड़ी—“क्या हुआ सुधा को?” बिनती कुछ नहीं बोली, उसे ऊपर ले गयी और कमरे के पास जाकर बोली, “उसी में हैं दीदी!”

कमरे के अन्दर की रोशनी उदास, फीकी और बीमार थी। एक नर्स सफेद पोशाक पहने पलंग के सिरहाने खड़ी थी, और कुर्सी पर सिर झुकाये डॉक्टर साहब बैठे थे। पलंग पर चादर ओढ़े सुधा पड़ी थी नर्स सामने थी, अतः सुधा का चेहरा नहीं दिखाई पड़

रहा था। चन्दर के भीतर पाँव रखते ही नर्स ने आँख के इशारे से कहा, “बाहर जाइए।” चन्दर ठिठककर खड़ा हो गया, डॉक्टर साहब ने देखा और वे भी उठकर चले आये।

“क्या हुआ सुधा को?” चन्दर ने बहुत व्याकुल, बहुत कातर स्वर में पूछा। डॉक्टर साहब कुछ नहीं बोले। चुपचाप चन्दर के कन्धे पर हाथ रखे हुए अपने कमरे में आये और बहुत भारी स्वर में बोले, “हमारी बिटिया गयी, चन्दर!” और आँसू छलक आये।

“क्या हुआ उसे?” चन्दर ने फिर उतने ही दुःखी स्वर में पूछा।

डॉक्टर साहब क्षण-भर पथराई आँखों से चन्दर की ओर देखते रहे, फिर सिर झुकाकर बोले, “एबॉर्शन!” थोड़ी देर बाद सिर उठाकर व्याकुल की तरह चन्दर का कन्धा पकड़कर बोले, “चन्दर, किसी तरह बचाओ सुधा को, क्या करें कुछ समझ में नहीं आता... अब बचेगी नहीं... परसों से होश नहीं आया। जाओ कपड़े बदलो, खाना खा लो, रात भर जागरण होगा...”

लेकिन चन्दर उठा नहीं, कुर्सी पर सिर झुकाये बैठा रहा।

सहसा नर्स आकर बोली, “ब्लीडिंग फिर शुरू हो गयी और नाड़ी डूब रही है।

डॉक्टर को बुलाइए... फौरन!” और वह लौट गयी।

डॉक्टर साहब उठ खड़े हुए। उनकी आँखों में बड़ी निराशा थी। बड़ी उदासी से बोले, “जा रहा हूँ, चन्दर! अभी आता हूँ।” चन्दर ने देखा, कार बड़ी तेजी से जा रही है। बिनती आकर बोली, “खाना खा लो, चन्दर!” चन्दर ने सुना ही नहीं।

“यह क्या हुआ, बिनती!” उसने घबराई आवाज में पूछा।

“कुछ समझ में नहीं आता, उस दिन सुबह जीजाजी गये। दोपहर में पापा ऑफिस गये थे। मैं सो रही थी, सहसा जीजी चीखी। मैं जागी तो देखा दीदी बेहोश पड़ी हैं। मैंने जल्दी से फोन किया। पापा आये, डॉक्टर आये। उसके बाद से पापा और नर्स के अलावा किसी को नहीं जाने देते दीदी के पास। मुझे भी नहीं।”

और बिनती रो पड़ी। चन्दर कुछ नहीं बोला। चुपचाप पत्थर की मूर्ति-सा कुर्सी पर बैठा रहा। खिड़की से बाहर की ओर देख रहा था।

थोड़ी देर में डॉक्टर साहब वापस आये। उनके साथ तीन डॉक्टर थे और एक नर्स। डॉक्टरों ने करीब दस मिनट देखा, फिर अलग कमरे में जाकर सलाह करने लगे। जब लौटे तो डॉक्टर साहब ने बहुत विह्वल होकर कहा, “क्या उम्मीद है?”

“घबराइए मत, घबराइए मत—अब तो जब तक अन्दरूनी सब साफ नहीं हो जाएगा तब तक खून जाएगा। नब्ज के लिए और होश के लिए एक इंजेक्शन देते हैं—अभी।”

इंजेक्शन देने के बाद डॉक्टर चले गये। पापा वहीं जाकर बैठ गये। बिनती और चन्दर चुपचाप बैठे रहे। करीब पाँच मिनट के बाद सुधा ने भयंकर स्वर में कराहना शुरू

किया। उन कराहों में जैसे उनका कलेजा उलटा आता हो। डॉक्टर साहब उठकर यहाँ चले आये और चन्दर से बोले, “वेहीमेंट ब्लीडिंग...” और कुर्सी पर सिर झुकाकर बैठ गये। बगल के कमरे से सुधा की दर्दनाक कराहें उठती थीं और सन्नाटे में छटपटाने लगती थीं। अगर आपने किसी जिन्दा मुर्गी के पंख और पूँछ नोचे जाते हुए देखा हो तभी आप उसका अनुमान कर सकते हैं; उस भयानकता का, जो उन कराहों में थी। थोड़ी देर बाद कराहें बन्द हो गयीं, फिर सहसा इस बुरी तरह से सुधा चीखी जैसे गाय डकार रही हो। पापा उठकर भागे—वह भयंकर चीख उठी और सन्नाटे में मँडराने लगी—बिनती रो रही थी—चन्दर का चेहरा पीला पड़ गया था और पसीने से तर हो गया था वह।

पापा लौटकर आये, “हम लोग देख सकते हैं?” चन्दर ने पूछा।

“अभी नहीं—अब ब्लीडिंग खत्म है।... नर्स अभी कपड़े बदल दे तो चलेंगे।”

थोड़ी देर में तीनों गये और जाकर खड़े हो गये। अब चन्दर ने सुधा को देखा। उसका चेहरा सफेद पड़ गया था। जैसे जाड़े के दिनों में थोड़ी देर पानी में रहने के बाद उँगलियों का रंग रक्तहीन श्वेत हो जाता है। गालों की हड्डियाँ निकल आयी थीं और होठ काले पड़ गये थे। पलकों के चारों ओर कालापन गहरा गया था और आँखें जैसे बाहर निकली पड़ती थीं। खून इतना अधिक बह गया था कि लगता था बदन पर चमड़े की एक हल्की झिल्ली मढ़ दी गयी हो। यहाँ तक कि भीतर की हड्डी के उतार-चढ़ाव तक स्पष्ट दिख रहे थे। चन्दर ने डरते-डरते माथे पर हाथ रखा। सुधा के होंठों में कुछ हरकत हुई, उसने मुँह खोल दिया और आँखें बन्द किये हुए ही उसने करवट बदली, फिर कराही और सिर से पैर तक उसका बदन काँप उठा। नर्स ने नाड़ी देखी और कहा अब ठीक है। कमजोरी बहुत है। थोड़ी देर बाद पसीना निकलना शुरू हुआ। पसीना पोंछते-पोंछते एक बज गया। बिनती बोली डॉक्टर साहब से—“मामाजी, अब आप सो जाइए। चन्दर देख लेंगे आज। नर्स है ही।”

डॉक्टर साहब की आँखें लाल हो रही थीं। सबके कहने पर वह अपनी सीट पर लेट रहे। नर्स बोली, “मैं बाहर आराम कुर्सी पर थोड़ा बैठ लूँ। कोई जरूरत हो तो बुला लेना।” चन्दर जाकर सुधा के सिरहाने बैठ गया। बिनती बोली, “तुम थके आये हो। चलो तुम भी सो रहो। मैं देख रही हूँ।”

चन्दर ने कुछ जवाब नहीं दिया। चुपचाप बैठा रहा। बिनती ने सभी खिड़कियाँ खोल दीं और चन्दर के पास ही बैठ गयी। सुधा सो रही थी चुपचाप। थोड़ी देर बाद बिनती उठी, घड़ी देखी, मुँह खोलकर दवा दी। सहसा डॉक्टर साहब घबराये हुए—से आये—

“क्या बात है, सुधा क्यों चीखी!”

“कुछ नहीं, सुधा तो सो रही है चुपचाप!” बिनती बोली।

“अच्छा, मुझे नींद में लगा कि वह चीखी है।” फिर वह खड़े-खड़े सुधा का माथा सहलाते रहे और फिर लौट गये। नर्स अन्दर थी। बिनती चन्दर को बाहर ले आयी और बोली, “देखो, तुम कल जीजाजी को एक तार दे देना!”

“लेकिन अब वह होंगे कहाँ?”

“विजगापट्टम या कोलम्बो में जहाजी कम्पनी के पते से दिलवा देना तार।”

दोनों फिर जाकर सुधा के पास बैठ गये। नर्स बाहर सो रही थी। साढ़े तीन बज गये थे। ठंडी हवा चल रही थी। बिनती चन्दर के कंधे पर सिर रखकर सो गयी। सहसा सुधा के होठ हिले और उसने कुछ अस्फुट स्वर में कहा। चन्दर ने सुधा के माथे पर हाथ रखा। माथा सहसा जलने लगा था; चन्दर घबरा उठा। उसने नर्स को जगाया। नर्स ने बगल में थर्मामीटर लगाया। तापक्रम एक सौ पाँच था। सारा बदन जल रहा था और रह-रहकर वह काँप उठती थी। चन्दर ने फिर घबराकर नर्स की ओर देखा। “घबराइए मत! डॉक्टर अभी आएगा।” लेकिन थोड़ी देर में हालत और बिगड़ गयी। और फिर उसी तरह दर्दनाक कराहें सुबह की हवा में सिर पटकने लगीं। नर्स ने इन लोगों को बाहर भेज दिया और बदन अँगोछने लगी।

थोड़ी देर में सुधा ने चीखकर पुकारा—“पापा...” इतनी भयानक आवाज थी कि जैसे सुधा को नरक के दूत पकड़े ले जा रहे हों। पापा गये। सुधा का चेहरा लाल था और वह हाथ पटक रही थी।... पापा को देखते ही बोली, “पापा... चन्दर को इलाहाबाद से बुलवा दो।”

“चन्दर आ गया बेटा, अभी बुलाते हैं।” ज्यों ही पापा ने माथे पर हाथ रखा कि सुधा चीख उठी—“तुम पापा नहीं हो... कौन हो तुम?... दूर हटो, छुओ मत... अरे बिनती...”

डॉक्टर शुक्ला ने नर्स की ओर देखा। नर्स बोली—

“डेलीरियम (सन्निपात)! डॉक्टर को बुलाइए।”

सुधा ने फिर करवट बदली और नर्स को देखकर बोली, “कौन गेसू... आओ बैठो। चन्दर नहा रहा है। अभी बुलाती हूँ। अरे चन्दर...” और फिर हाँफने लगी, आँखें बन्द कर लीं और रोकर बोली, “पापा, तुम कहाँ चले गये?”

नर्स ने चन्दर और बिनती को बुलाया। बिनती पास जाकर खड़ी हो गयी—आँसू पोंछकर बोली, “दीदी, हम आ गये।” और सुधा की बाँह पर हाथ रख दिया। सुधा ने आँखें नहीं खोलीं, बिनती के हाथ पर हाथ रखकर बोली, “बिनती, पापा कहाँ गये हैं?”

“खड़े तो हैं मामाजी!”

“झूठ मत बोल कम्बख्त... अच्छा ले, शरबत तैयार है, जा चन्दर स्टडीरूम में पढ़ रहा है बुला ला, जा!”

बिनती फफककर रो पड़ी।

“रोती क्यों है?” सुधा ने कराहकर कहा, “मैं जाऊँगी तो चन्दर को तेरे पास छोड़ जाऊँगी। जा चन्दर को बुला ला, नहीं बर्फ घुल जाएगी—शरबत छान लिया है?”

चन्दर आगे आया। रुंधे गले से आँसू पीते हुए बोला, “सुधा, आँखें खोलो। हम आ गये सुधी!”

डॉक्टर साहब कुर्सी पर पड़े सिसक रहे थे... सुधा ने आँखें खोलीं और चन्दर को देखते ही फिर बहुत जोर से चीखी... “तुम... तुम ऑस्ट्रेलिया से लौट आये? झूटे! तुम चन्दर हो? क्या मैं तुम्हें पहचानती नहीं? अब क्या चाहिए? इतना कहा, तुमसे हाथ जोड़ा, मेरी क्या हालत है? लेकिन तुम्हें क्या? जाओ यहाँ से वर्ना मैं अभी सिर पटक दूँगी...” और सुधा ने सिर पटक दिया—“नहीं गये?” नर्स ने इशारा किया—चन्दर कमरे के बाहर आया और कुर्सी पर सिर झुकाकर बैठ गया। सुधा ने आँखें खोलीं और फटी-फटी आँखों से चारों ओर देखने लगी। फिर नर्स से बोली—

“गेसू तुम बहुत बहादुर हो! तुमने अपने को बेचा नहीं; अपने पैर पर खड़ी हो। किसी के आश्रय में नहीं हो। कोई खाना-कपड़ा देकर तुम्हें खरीद नहीं सकता गेसू। बिनती कहाँ गयी...?”

“मैं खड़ी हूँ दीदी?”

“हैं...अच्छा, पापा कहाँ हैं?” सुधा ने कराहकर पूछा।

डॉक्टर साहब उठकर आ गये—“बेटा!” बड़े दुलार से सुधा के माथे पर हाथ रखकर बोले। सुधा रो पड़ी—“कहाँ थे पापा, अभी तक तुम? हमने इतना पुकारा, न तुम बोले न चन्दर बोला...हमें तो डर लग रहा था, इतना सूना था... जाओ महाराजिन ने रोटी सेंक ली है—खा लो। हाँ, ऐसे बैठ जाओ। लो पापा, हमने नानखटाई बनायी...”

डॉक्टर शुक्ला रोते हुए चले गये—बिनती ने चन्दर को बुलाया। देखा चन्दर कुर्सी पर हथेली में मुँह छिपाये बैठा था। बिनती गयी और चन्दर के कन्धे पर हाथ रखा। चन्दर ने देखा और सिर झुका लिया, “चलो चन्दर, दीदी फिर बेहोश हो गयीं।”

इतने में नर्स बोली। “वह फिर होश में आयी हैं; आप लोग वहीं चलिए।”

सुधा ने आँखें खोल दी थीं—चन्दर को देखते ही बोली, “चन्दर आओ, कोई मास्टर ठीक किया तुमने? जो कुछ पढ़ा था वह भूल रही हूँ। अब इम्तहान में पास नहीं होऊँगी।”

“डेलीरियम अब भी है।” नर्स बोली। सहसा सुधा ने चन्दर का हाथ छोड़ दिया

और झट से हथेलियाँ आँखों पर रख लीं और बोली, “ये कौन आ गया? यह चन्दर नहीं है। चन्दर नहीं है। चन्दर होता तो मुझे डाँटता—क्यों बीमार पड़ीं? अब बताओ मैं चन्दर को क्या जवाब दूँगी... चन्दर को बुला दो, गेसू! जिन्दगी में दुश्मनी निभायी, अब मौत में तो न निभाए।”

“उफ! मरीज के पास इतने आदमी? तभी डेलीरियम होता है।” सहसा डॉक्टर ने प्रवेश किया। कोई दूसरा डॉक्टर था, अँग्रेज था। बिनती और चन्दर बाहर चले आये। बिनती बोली, “ये सिविल सर्जन हैं।” उसने खून मँगवाया, देखा फिर डॉक्टर शुक्ला को भी हटा दिया। सिर्फ नर्स रह गयी। थोड़ी देर बाद वह निकला तो उसका चेहरा स्याह था। “क्या यह प्रैग्नेंसी पहली मर्तबा थी?”

“जी हाँ?”

डॉक्टर ने सिर हिलाया और कहा, “अब मामला हाथ से बाहर है। इंजेक्शन लगेंगे। अस्पताल ले चलिए।”

“डॉक्टर शुक्ला, मवाद आ रहा है, कल तक सारे बदन में फैल जाएगा, किस बेवकूफ डॉक्टर ने देखा था...”

चन्दर ने फोन किया। एम्बुलेंस कार आ गयी। सुधा को उठाया गया...

दिन बड़ी ही चिन्ता में बीता। तीन-तीन घंटे पर इंजेक्शन लग रहे थे। दोपहर को दो बजे इंजेक्शन खत्म कर डॉक्टर ने एक गहरी साँस ली और बोला, “कुछ उम्मीद है—अगर बारह घंटे तक हार्ट ठीक रहा तो मैं आपकी लड़की आपको वापस दूँगा।”

बड़ा भयानक दिन था। बहुत ऊँची छत का कमरा, दालानों में टाट के परदे पड़े थे और बाहर गर्मी की भयानक लू हू-हू करती हुई दानवों की तरह मुँह फाड़े दौड़ रही थी। डॉक्टर साहब सिरहाने बैठे थे, पथरीली निगाहों से सुधा के पीले मृतप्राय चेहरे की ओर देखते हुए... बिनती और चन्दर बिना कुछ खाये-पीये चुपचाप बैठे थे—रह-रहकर बिनती सिसक उठती थी, लेकिन चन्दर ने मन पर पत्थर रख लिया था। वह एकटक एक ओर देख रहा था... कमरे में वातावरण शान्त था—रह-रहकर बिनती की सिसकियाँ, पापा की निःश्वासें तथा घड़ी की निरन्तर टिक-टिक सुनाई पड़ रही थी।

चन्दर का हाथ बिनती की गोद में था। एक मूक संवेदना ने बिनती को सँभाल रखा था। चन्दर कभी बिनती की ओर देखता, कभी घड़ी की ओर। सुधा की ओर नहीं देख पाता था। दुःख अपनी पूरी चोट करने के वक्त अक्सर आदमी की आत्मा और मन को क्लोरोफार्म सुँघा देता है। चन्दर कुछ भी सोच नहीं पा रहा था। संज्ञा-हृत, नीरव, निश्चेष्ट...

घड़ी की सूई अविराम गति से चल रही थी। सर्जन कई दफे आये। नर्स ने आकर

टेम्परेचर लिया। रात को ग्यारह बजे टेम्परेचर उतरने लगा। डॉक्टर शुक्ला की आँखें चमक उठीं। ठीक बारह बजकर पाँच मिनट पर सुधा ने आँखें खोल दीं। चन्दर ने बिनती का हाथ मारे खुशी से दबा दिया।

“बिनती कहाँ है?” बड़े क्षीण स्वर में पूछा।

सुधा ने आँख घुमाकर देखा। पापा को देखते ही मुसकरा पड़ी।

बिनती और चन्दर उठकर आ गये।

“आहा, चन्दर तुम आ गये? हमारे लिए क्या लाये?”

“पगली कहीं की!” मारे खुशी के चन्दर का गला भर गया।

“लेकिन तुम इतनी देर में क्यों आये, चन्दर!”

“कल रात को ही आ गये थे हम।”

“चलो-चलो, झूठ बोलना तो तुम्हारा धर्म बन गया। कल रात को आ गये होते तो अभी तक हम अच्छे भी हो गये होते।” और वह हाँफने लगी।

सर्जन आया, “बात मत करो...” उसने कहा।

उसने एक मिक्सचर दिया। फिर आला लगाकर देखा, और डॉक्टर शुक्ला को अलग ले जाकर कहा, “अभी दो घंटे और खतरा है। लेकिन परेशान मत होइए। अब सत्तर प्रतिशत आशा है। मरीज जो कहे, उसमें बाधा मत दीजिएगा। उसे ज़रा भी परेशानी न हो।”

सुधा ने चन्दर को बुलाया, “चन्दर, पापा से मत कहना। अब मैं बचूंगी नहीं। अब कहीं मत जाना, यहीं बैठो।”

“छिः पगली! डॉक्टर कह रहा है अब खतरा नहीं है।” चन्दर ने बहुत प्यार से कहा, “अभी तो तुम हमारे लिए जिन्दा रहोगी न!”

“कोशिश तो कर रही हूँ चन्दर, मौत से लड़ रही हूँ! चन्दर, उन्हें तार दे दो! पता नहीं देख पाऊँगी या नहीं।”

“दे दिया, सुधा!” चन्दर ने कहा और सिर झुकाकर सोचने लगा।

“क्या सोच रहे हो, चन्दर! उन्हें इसीलिए देखना चाहती हूँ कि मरने के पहले उन्हें क्षमा कर दूँ, उनसे क्षमा माँग लूँ!... चन्दर, तुम तकलीफ का अन्दाजा नहीं कर सकते।”

डॉक्टर शुक्ला आये। सुधा ने कहा, “पापा, आज तुम्हारी गोद में लेट लें।” उन्होंने सुधा का सिर गोद में रख लिया। “पापा, चन्दर को समझा दो, ये अब अपना ब्याह तो कर ले।... हाँ पापा, हमारी भागवत मँगवा दो...”

“शाम को मँगवा देंगे बेटी, अब एक बज रहा है...”

“देखा...” सुधा ने कहा, “बिनती, यहाँ आओ!”

बिनती आयी। सुधा ने उसका माथा चूमकर कहा, “रानी, जो कुछ तुझे आज तक समझाया वैसा ही करना, अच्छा! पापा तेरे जिम्मे हैं।”

बिनती रोकर बोली, “दीदी, ऐसी बातें क्यों करती हो...”

सुधा कुछ न बोली, गोद से हटाकर सिर तकिये पर रख लिया।

“जाओ पापा, अब सो रहो तुम।”

“सो लूँगा, बेटी...”

“जाओ। नहीं फिर हम अच्छे नहीं होंगे! जाओ...”

सर्जन का आदेश था कि मरीज के मन के विरुद्ध कुछ नहीं होना चाहिए— डॉक्टर शुक्ला चुपचाप उठे और बाहर बिछे पलंग पर लेट रहे।

सुधा ने चन्दर को बुलाया, बोली, “मैं झुक नहीं सकती—बिनती यहाँ आ—हाँ, चन्दर के पैर छू...अरे अपने माथे में नहीं पगली मेरे माथे से लगा दे। मुझसे झुका नहीं जाता।” बिनती ने रोते हुए सुधा के माथे में चरण-धूल लगा दी, “रोती क्यों है, पगली! मैं मर जाऊँ तो चन्दर तो है ही। अब चन्दर तुझे कभी नहीं रुलाएँगे...चाहे पूछ लो! इधर आओ, चन्दर! बैठ जाओ, अपना हाथ मेरे होंठों पर रख दो...ऐसे...अगर मैं मर जाऊँ तो रोना मत, चन्दर! तुम ऊँचे बनोगे तो मुझे बहुत चैन मिलेगा। मैं जो कुछ नहीं पा सकी, वह शायद तुम्हारे ही माध्यम से मिलेगा मुझे। और देखो, पापा को अकेले दिल्ली में न छोड़ना...लेकिन मैं मरूँगी नहीं, चन्दर...यह नरक भोगकर भी तुम्हें प्यार करूँगी...मैं मरना नहीं चाहती, जाने फिर कभी तुम मिलो या न मिलो, चन्दर...उफ कितनी तकलीफ है, चन्दर! हम लोगों ने कभी ऐसा नहीं सोचा था...अरे हटो-हटो...चन्दर!” सहसा सुधा की आँखों में फिर अँधेरा छा गया—“भागो, चन्दर! तुम्हारे पीछे कौन खड़ा है?” चन्दर घबराकर उठ गया—पीछे कोई नहीं था...“अरे चन्दर, तुम्हें पकड़ रहा है। चन्दर, तुम मेरे पास आओ।” सुधा ने चन्दर का हाथ पकड़ लिया—बिनती भागकर डॉक्टर साहब को बुलाने गयी। नर्स भी भागकर आयी। सुधा चीख रही थी—“तुम हो कौन? चन्दर को नहीं ले जा सकते। मैं चल तो रही हूँ। चन्दर, मैं जाती हूँ इसके साथ, घबराना मत। मैं अभी आती हूँ। तुम तब तक चाय पी लो—नहीं, मैं तुम्हें उस नरक में नहीं जाने दूँगी, मैं जा तो रही हूँ—बिनती मेरी चप्पल ले आ...अरे पापा कहाँ हैं...पापा...”

और सुधा का सिर चन्दर की बाँह पर लुढ़क गया—बिनती को नर्स ने सँभाला और डॉक्टर शुक्ला पागल की तरह सर्जन के बँगले की ओर दौड़े...घड़ी ने टन-टन दो बजाये...

जब एम्बुलेंस कार पर सुधा का शव बँगले पहुँचा तो शंकरबाबू आ गये थे—बहू को विदा कराने...

उपसंहार

जिन्दगी का यन्त्रणा-चक्र एक वृत्त पूरा कर चुका था। सितारे एक क्षितिज से उठकर, आसमान पार कर दूसरे क्षितिज तक पहुँच चुके थे। साल-डेढ़ साल पहले सहसा जिन्दगी की लहरों में उथल-पुथल मच गयी थी और विक्षुब्ध महासागर की तरह भूखी लहरों की बाँहें पसारकर वह किसी को दबोच लेने के लिए हुंकार उठी थी। अपनी भयानक लहरों के शिकंजे में सभी को झकझोरकर, सभी के विश्वासों और भावनाओं को चकनाचूर कर अन्त में सबसे प्यारे, सबसे मासूम और सबसे सुकुमार व्यक्तित्व को निगलकर अब धरातल शान्त हो गया—तूफान थम गया था, बादल खुल गये थे और सितारे फिर आसमान के घोंसलों से भयभीत विहंग-शावकों की तरह झाँक रहे थे।

डॉक्टर शुक्ला छुट्टी लेकर प्रयाग चले आये थे। उन्होंने पूजा-पाठ छोड़ दिया था। उन्हें कभी किसी ने गाते हुए नहीं सुना था। अब वह सुबह उठकर लॉन पर टहलते और एक भजन गाते थे। बिनती, जो इतनी सुन्दर थी, अब केवल खामोश पीड़ा और अवशेष स्मृति की छाया मात्र थी। चन्दर शान्त था, पत्थर हो गया था, लेकिन उसके माथे का तेज बुझ गया था और वह बूढ़ा-सा लगने लगा था और यह सब केवल पन्द्रह दिनों में।

जेठ दशहरे के दिन डॉक्टर साहब बोले, “चन्दर, आज जाओ, उसके फूल छोड़ आओ, लेकिन देखो, शाम को जाना जब वहाँ भीड़-भाड़ न हो, अच्छा!” और चुपचाप टहलकर गुनगुनाने लगे।

शाम को चन्दर चला तो बिनती भी चुपचाप साथ हो ली; न बिनती ने आग्रह किया न चन्दर ने स्वीकृति दी। दोनों खामोश चल दिये। कार पर चन्दर ने बिनती की गोद में गठरी रख दी। त्रिवेणी पर कार रुक गयी। हल्की चाँदनी मैले कफन की तरह लहरों की लाश पर पड़ी हुई थी। दिन-भर कमाकर मल्लाह थककर सो रहे थे। एक बूढ़ा बैठा चिलम

पी रहा था। चुपचाप उसकी नाव पर चन्दर बैठ गया। बिनती उसकी बगल में बैठ गयी। दोनों खामोश थे, सिर्फ पतवारों की छप-छप सुन पड़ती थी। मल्लाह ने तख्त के पास नाव बाँध दी और बोला, “नहा लें बाबू!” वह समझता था बाबू सिर्फ घूमने आये हैं।
“जाओ!”

वह दूर तख्तों की कतार के उस छोर पर जाकर खो गया। फिर दूर-दूर तक फैला संगम...और सन्नाटा...चन्दर सिर झुकाये बैठा रहा...बिनती सिर झुकाये बैठी रही। थोड़ी देर बाद बिनती सिसक पड़ी। चन्दर ने सिर उठाया और फौलादी हाथों से बिनती का कन्था झकझोरकर बोला, “बिनती, यदि रोयी तो यहीं फेंक देंगे उठाकर कम्बख्त, अभागी!”
बिनती चुप हो गयी।

चन्दर चुपचाप बैठा तख्त के नीचे से गुजरती हुई लहरों को देखता रहा। थोड़ी देर बाद उसने गठरी खोली...फिर रुक गया, शायद फेंकने का साहस नहीं हो रहा था... बिनती ने पीछे से आकर एक मुट्ठी राख उठा ली और अपने आँचल में बाँधने लगी। चन्दर ने चुपचाप उसकी ओर देखा, फिर झपटकर उसने बिनती का आँचल पकड़कर राख छीन ली और गुराँता हुआ बोला, “बदतमीज कहीं की!...राख ले जाएगी—अभागी!” और झट से कपड़े सहित राख फेंक दी और आग्नेय दृष्टि से बिनती की ओर देखकर फिर सिर झुका लिया। लहरों में राख एक जहरीले पनियाले साँप की तरह लहराती हुई चली जा रही थी।

बिनती चुपचाप सिसक रही थी।

“नहीं चुप होगी!” चन्दर ने पागलों की तरह बिनती को ढकेल दिया, बिनती ने बाँस पकड़ लिया और चीख पड़ी।

चीख से चन्दर जैसे होश में आ गया। थोड़ी देर चुपचाप रहा फिर झुककर अंजलि में पानी लेकर मुँह धोया और बिनती के आँचल से पोंछकर बहुत मधुर स्वर में बोला, “बिनती, रोओ मत! मेरी समझ में नहीं आता कुछ भी! रोओ मत!” चन्दर का गला भर आया और आँख में आँसू छलक आये—“चुप हो जाओ, रानी! मैं अब इस तरह कभी नहीं करूँगा—उठो! अब हम दोनों को निभाना है, बिनती!” चन्दर ने तख्त पर छीना-झपटी में बिखरी हुई राख चुटकी में उठायी और बिनती की माँग में भरकर माँग चूम ली। उसके होठ राख में सन गये।

सितारे टूट चुके थे। तूफान खत्म हो चुका था।

नाव किनारे पर आकर लग गयी थी—मल्लाह को चुपचाप रुपये देकर बिनती का हाथ थामकर चन्दर ठोस धरती पर उतर पड़ा...मुर्दा चाँदनी में दोनों छायाएँ मिलती-जुलती हुई चल दीं।

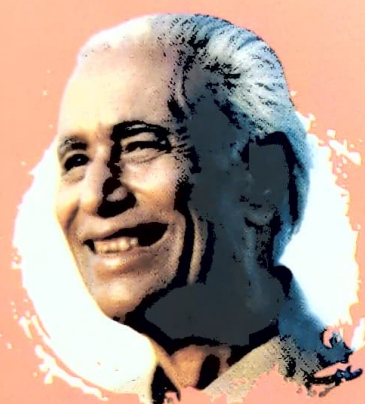
गंगा की लहरों में बहता हुआ राख का साँप टूट-फूटकर बिखर चुका था और नदी फिर उसी तरह बहने लगी थी जैसे कभी कुछ हुआ ही न हो।

गुनाहों का देवता

धर्मवीर भारती के इस उपन्यास का प्रकाशन और इसके प्रति पाठकों का अटूट सम्मोहन हिन्दी साहित्य-जगत् की एक बड़ी उपलब्धि बन गये हैं। दरअसल, यह उपन्यास हमारे समय में भारतीय भाषाओं की सबसे अधिक बिकनेवाली लोकप्रिय साहित्यिक पुस्तकों में पहली पंक्ति में है। लाखों-लाख पाठकों के लिए प्रिय इस अनूठे उपन्यास की माँग आज भी वैसी ही बनी हुई है जैसी कि इसके प्रकाशन के प्रारम्भिक वर्षों में थी।—और इस सबका बड़ा कारण शायद एक समर्थ रचनाकार की कोई अव्यक्त पीड़ा और एकान्त आस्था है, जिसने इस उपन्यास को एक अद्वितीय कृति बना दिया है।

मेरे लिए इस उपन्यास का लिखना वैसा ही रहा है जैसा पीड़ा के क्षणों में पूरी आस्था से प्रार्थना करना; और इस समय भी मुझे ऐसा लग रहा है जैसे मैं वह प्रार्थना मन-ही-मन दोहरा रहा हूँ, बस...

धर्मवीर भारती



धर्मवीर भारती

बहुचर्चित लेखक एवं सम्पादक डॉ. धर्मवीर भारती 25 दिसम्बर, 1926 को इलाहाबाद में जनमे और वहीं शिक्षा प्राप्त कर इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अध्यापन-कार्य करने लगे। इसी दौरान कई पत्रिकाओं से भी जुड़े। अन्त में 'धर्मयुग' के सम्पादक के रूप में गम्भीर पत्रकारिता का एक मानक निर्धारित किया।

डॉ. धर्मवीर भारती बहुमुखी प्रतिभा के लेखक थे। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबन्ध, आलोचना, अनुवाद, रिपोर्टाज आदि विधाओं को उनकी लेखनी से बहुत-कुछ मिला है। उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं : साँस की कलम से, मेरी वाणी गैरिक वसना, कनुप्रिया, सात गीत-वर्ष, ठण्डा लोहा, सपना अभी भी, सूरज का सातवाँ घोड़ा, बन्द गली का आखिरी मकान, पश्यन्ती, कहनी अनकहनी, शब्दिता, अन्धा युग, मानव-मूल्य और साहित्य और गुनाहों का देवता।

भारती जी 'पद्मश्री' की उपाधि के साथ ही 'व्यास सम्मान' एवं अन्य कई राष्ट्रीय पुरस्कारों से अलंकृत हुए।

4 सितम्बर, 1997 को मुम्बई में देहावसान।